458

सुरुचि प्रकाशन

17

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी शा. द. केंद्र)
क्रमांक ~~2411K~~ 458

458

हमारा कश्मीर

डा. गौरीनाथ रस्तोगी

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुंज, नयी दिल्ली-११००५५

प्रकाशक :

सुरुचि प्रकाशन
(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)
केशव कुंज, झंडेवाला, नयी दिल्ली - ११००५५

© सुरुचि प्रकाशन

प्रथम संस्करण : युगाब्द ५०९२ (विक्रम संवत् २०४७) (१९९० ई.)

मूल्य : दस रुपये

छायाक्षर-संयोजक : ऑफिस फोटोस्टेट प्रिण्टर्स, नयी दिल्ली

मुद्रक :

आभार

भारत की सांस्कृतिक परम्परा के अभिन्न अंग दशावतारों में से एक भगवान् वाराह की स्मृति को नित्यनूतन करने वाला 'बारामूला', भगवान् अमरनाथ के पावन मंन्दिर से सुशोभित देश का मुकुटमणि, संसार की सुन्दरतम केसर-क्यारी, राष्ट्र का नदंनवन, भारतीय संस्कृति एवं हिन्दु जीवन-दर्शन का अजस्र प्रेरणा-स्रोत, धरती का स्वर्ग तथा महर्षि कश्यप की कर्म-भूमि कश्यपमर्ग या कश्मीर आज अनन्त (शेष) नाग और जल-प्रलय से उबरे हिमगिरि-शिखर सरीखे अनेकानेक पावन स्थलों का निरादर सहता हुआ, अलगाववाद, राष्ट्रद्रोही हरकतों और पाकिस्तान के इशारे पर चलने वाले देशद्रोही षड्यन्त्रों का केन्द्र बनकर धू-धू जल रहा है। भारत माता के शीश को उससे विलग करने का घातक दुष्चक्र निरंतर जारी है। फिर भी शासनतंत्र और राष्ट्रीय नेतृत्व दिशाहीनता का शिकार है। सम्यक् दृष्टि और संकल्प-शक्ति के अभाव में वह असमंजस एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में है। परिणामस्वरूप कश्मीर घाटी में बसने वाला राष्ट्रीय समाज सुरक्षा की खोज में आज अपनी ही मातृभूमि में विस्थापित बन गया है।

भारत की इस दुर्भाग्यपूर्ण कहानी को अनावृत करना, उसे सही राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में भारत के जन-ज़न के सम्मुख रखना परिस्थिति की मांग है। उसकी पूर्ति करने के लिए आगे के पृष्ठों में तथ्यपूर्ण जानकारी अंकित करने की चेष्टा की गयी है।

मेरा यह सौभाग्य है और पाठकों को भी यह देखकर हर्ष होगा कि प्रो. राजेन्द्र सिंह जी ने, जिन्हें देश-विदेश में संघ के छोटे-बड़े सहस्रों कार्यकर्ता स्नेह से 'रज्जू भैया' के नाम से पुकारते हैं और जो राष्ट्रोत्थान में लगे अनेक संगठनों के प्रेरणा-स्रोत हैं, इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया। मैं उनका कृतज्ञ हूँ और अनुभव करता हूँ कि राष्ट्र की प्रमुख समस्या पर उनके जैसे संघ के एक वरिष्ठ अधिकारी के विचारों को समाविष्ट किये बिना पुस्तक अपूर्ण रहती।

इस प्रयास में मुझे अनेक महानुभावों का सक्रिय सहयोग और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। जम्मू के प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता श्रीमान् श्यामलाल जी शर्मा ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं गूढ़ तत्त्वों की जानकारी देकर मेरा कार्य सरल बनाया है। १९४७ से लेकर अब तक के जम्मू-कश्मीर के संपूर्ण घटनाचक्र के साथ सक्रिय जुड़े रहने के कारण वे अनेक घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी हैं। सम्प्रति वे जम्मू विभाग के संघचालक

भी हैं। सुप्रसिद्ध लेखक एवं राजनेता श्रीमान् बलराज जी मधोक की १९४७ के पाकिस्तानी आक्रमण के दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में संपादित भूमिका स्पृहणीय रही है। कश्मीर मामले के अत्यंत गम्भीर अध्येताओं में वे अग्रिम रहे हैं। उनकी कश्मीर संबंधी पुस्तकें इस अतिसंवेदनशील समस्या का सही आकलन करने में बहुत सहायक रहीं। लेखक ने उनके लेखन का पर्याप्त उपयोग किया है। उससे भी बढ़कर मधोक जी की कृपा यह रही है कि उन्होंने इस पुस्तक की पांडुलिपि को पढ़कर अपने अमूल्य सुझावों से मुझे लाभान्वित भी किया है। उनके अतिरिक्त सर्वश्री होरीलाल सक्सेना, भारतीय इंटेलीजेन्स ब्यूरो के भूतपूर्व निदेशक बी. एन. मलिक, सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश मेहरचन्द महाजन और पी. बी. गजेन्द्रगडकर, नेहरू मंत्रिमंडल के सदस्य अजित प्रसाद जैन, सुप्रसिद्ध पत्रकार दुर्गादास, सुविख्यात विधिवेत्ता डा. बाबूराम चौहान आदि के कश्मीर संबंधी ग्रन्थों ने महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करायी है। अतः उपर्युक्त सभी महानुभावों, विद्वज्जनों एवं उनके प्रकाशकों के प्रति अपना हार्दिक आभार तथा कृतज्ञता व्यक्त करना मेरा प्राथमिक कर्तव्य है।

इन पंक्तियों को लिपिबद्ध करने की प्रेरणा सर्वप्रथम मुझे प्रख्यात राष्ट्रवादी समाचार-साप्ताहिक 'पाचजन्य' के भूतपूर्व सम्पादक श्रीमान् यादवराव देशमुख से प्राप्त हुई। तदुपरान्त सर्व श्री कौशलकिशोर जी, भानुप्रताप जी शुक्ल, तथा इन्द्रेशजी मुझे सभी प्रकार की सहायता देने के साथ-साथ मेरा उत्साहवर्धन करते रहे। प्रथम दो महानुभावों ने न केवल अपने अमूल्य सुझावों से मेरा मार्गदर्शन किया बल्कि पुस्तक के कलेवर को सुगठित रूप देने में मेरे सक्रिय सहभागी रहे।

मेरी जीवन-संगिनी श्रीमती प्रभारानी रस्तोगी एक मूक साधिका के समान पारिवारिक दायित्व का वहन करती हुई मुझे इस संकल्प को पूर्ण करने के लिए निरन्तर प्रेरित करती रहीं। उनके प्रति आभार प्रकट करने का साहस मुझमें नहीं है।

मेरा यह अत्यल्प प्रयास सुविज्ञ पाठकों के हृदय में जम्मू-कश्मीर समस्या के प्रति कुछ भी चेतना उत्पन्न कर सका तो इस क्षुद्र प्रयास को सार्थक समझूंगा।

अनंत चतुदर्शी, संवत २०४७
युगाब्द ५०९२
४ सितम्बर, १९९०

गौरीनाथ रस्तोगी
राधाकृष्ण सनातन धर्म महाविद्यालय
कैथल (हरियाणा)

आमुख

कश्मीर की वर्तमान स्थिति देश की एक ज्वलंत समस्या है। लगभग दो लाख कश्मीरी हिन्दू जो प्रायः सभी पढ़े-लिखे और खाते-पीते थे – उनमें से कई उच्च प्रशासनिक पदों पर कार्यरत थे या सफल डाक्टर, वकील या शिक्षाविद थे–अपनी सारी चलाचल सम्पत्ति, फैक्टरी, मकान आदि सब कुछ छोड़कर घाटी से भाग खड़े होने को विवश हुए। घाटी छोड़ते समय उनके पास केवल उतने की वस्त्र थे, जो उनके तन पर थे। उनको ट्रक-टैक्सी अर्थात् जो भी वाहन मिला, उसका मुहँमाँगा किराया देकर बिना किसी सुरक्षा-व्यवस्था के भगवान भरोसे भागना पड़ा। यह विस्थापन या निष्कासन विभाजन के बाद का सबसे अधिक व्यथा देने वाला और मनोबल गिराने वाला है। यह भारत सरकार पर एक शर्मनाक काला धब्बा है, जो खाड़ी देशों से लोगों को निकाल लाने के लिए सभी संभव उपाय करके वहाँ वायुयान भेज रही है, उसके विदेश मंत्री तथा अन्य मंत्री दुनियाँ भर में चक्कर काट रहे हैं और उन लोगों की, जो वहाँ धन कमाने के लिए गये थे, सहायता की प्रार्थना करते घूम रहे हैं। किन्तु उसी सरकार ने अपने देश में अपने ही रक्त-मांस के बंधुओं को संकट से बाहर निकालने के लिए बसों या किसी भी वाहन और सुरक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया। यह कितनी रुला देने वाली बात है कि हमारी सरकार को जॉर्डन के कैम्पों में ठहरे शरणार्थियों की दुर्दशा सुन-देखकर तो पीड़ा हुई, किन्तु जम्मू तथा देश के अन्यान्य शिविरों में शरण लेने के लिए विवश देश-बन्धुओं की दुर्दशा के प्रति वे कितने उदासीन बने हुए हैं ! जो लोग कई-कई कमरों वाले मकानों में रहते थे, आज १२' × १२' के तंबुओं में इकट्ठे ठूँस दिये गये हैं। उनको उसी सीमित स्थान में सोना-बैठना, भोजन बनाना जैसे सभी दैनिक क्रियाकलाप करने हैं। उनको वहाँ नाम मात्र के भी सार्वजनिक प्रसाधन उपलब्ध नहीं हैं। वे वहाँ निरीह जीवन जी रहे हैं। औषध, दूध, बालकों के योग्य आहार, वहाँ कुछ भी उपलब्ध नहीं है। यदि भारत सरकार यह सोचकर कि कुवाइती दीनार की कोई कीमत नहीं रही है, वहाँ के लोगों की भरपाई भारत के खजाने से करती है तो क्या उसे ज्ञात नहीं है कि श्रीनगर घाटी के बैंक खाते की भी कोई कीमत नहीं बची है। उनके लिए तो

भारत सरकार ने कुछ नहीं किया। यह क्यों ? क्या इस भेदभाव का कारण यह है कि खाड़ी में फँसे अधिकांश नागरिक मुस्लिम हैं ? मुफ्ती और दूसरे मंत्री, जो भारी पुलिस सुरक्षा में वहाँ चक्कर लगाने जाते हैं, अनुमान नहीं लगा सकते कि घाटी से निकले हिन्दुओं पर वहाँ क्या बीती। उनके हृदय पत्थर के हो चुके हैं, उनको उन विस्थापितों की दुखःवेदना की अनुभूति ही नहीं है। जो सरकार अपने उच्चतम अधिकारियों, विश्वविद्यालय-कुलपति और एच. एम. टी. के प्रबन्धक की रक्षा नहीं कर सकी वह कैसे आशा करती है कि दूरस्थ स्थानों पर नियुक्त उसके छोटे-छोटे कर्मचारी वहाँ सुरक्षित रह सकते हैं ? लेकिन मुफ्ती साहब ने वस्तुस्थिति की ओर आँख बन्द कर एक निष्ठुर आदेश दे दिया कि कर्मचारी ड्यूटी पर पहुँचें अन्यथा उनके स्थान पर नये स्थानीय लोग भर्ती कर लिये जायेंगे। घाटी के त्रास और विपत्ति को उजागर करने वाले और अनेक उदाहरण या प्रसंग बताये जा सकते हैं। अब यह स्पष्ट है कि यदि ये हिन्दू भाई-बहिन घाटी में वापस जाकर वहाँ सुरक्षित व ससम्मान नहीं रह सकते हैं तो नेताओं द्वारा बार-बार यह घोषित करने के बाद भी कि कश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है, घाटी भारत के भूभाग के रूप में नहीं रह सकेगी।

इस छोटी पुस्तक में कश्मीर-समस्या के इतिहास और इसे सुलझाने के प्रयास में राष्ट्रीय नेताओं द्वारा की गयी भयंकर भूलों का संक्षिप्त विवरण व विश्लेषण दिया गया है, जिससे वहाँ की वर्तमान स्थिति की पृष्ठभूमि सबके ध्यान में आ जाये। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर जहाँ ५३० से अधिक देशी राज्यों का भारत में विलय कराने में सरदार पटेल सफल हुए, वहीं दूसरी ओर एकमात्र रियासत की विलय-प्रक्रिया, जिसको पूरा करना पं. नेहरू की जिम्मेदारी थी, उनकी अदूरदर्शिता और राजनीतिक दृष्टि के अभाव के कारण उलझ गयी। संविधान में धारा ३७० को सम्मिलित करना, सैन्य शक्ति होते हुए भी पूरे जम्मू-कश्मीर को पाकिस्तानी सेना से मुक्त नहीं कराना, युद्ध-विराम की मूर्खतापूर्ण घोषणा, संयुक्त राष्ट्रसंघ में कश्मीर का मामला ले जाने की अदूरदर्शिता – ये सब ऐसी बातें हैं जिन्हें पढ़कर इतिहास के पारखी अपने नेताओं की समझ पर चकित होंगे। पं. नेहरू और शेख अब्दुल्ला जम्मू-कश्मीर को एक आदर्श सर्व-पंथ-समभावी राज्य कहते थे, जिसे उन्होंने वहाँ करोड़ों रुपये गलाकर और सब प्रकार की सुविधाएँ उड़ेल कर बनाया था। यदि यही उनका आदर्श राज्य है तो सरलतापूर्वक समझा जा सकता है कि उनका सेक्युलरिज्म (सर्व-पंथ-समभाव) न केवल नितांत खोखला था अपितु देश के लिए

यह पुस्तक पाठकों की आँखों को अश्रुपूरित करने के लिए नहीं लिखी गयी है। इसमें वर्तमान दुःखद स्थिति को विजय-स्थिति में परिवर्तित करने के सुझावों का भी उल्लेख है। इस पुस्तक की विषय-सामग्री उन लोगों ने संकलित की है, जिन्होंने स्वयं १९४७ से लेकर आज तक चले आ रहे समस्त घटनाक्रम में भागीदारी की है—वहाँ के उथल-पुथल के साथ सदा जुड़े रहे हैं, उस इतिहास के स्वयं भाग हैं।

इस पुस्तक से कश्मीर संबंधी साहित्य में एक उपयोगी पुस्तक की वृद्धि होगी। उन लोगों के लिए यह बहुत उपयोगी रहेगी, जिन के पास बड़े ग्रन्थों के अध्ययन के लिए समय नहीं है। मैं सभी राष्ट्रवादियों और देश के लिए नीतियाँ निर्धारित करने वाले वर्ग से अनुरोध करता हूँ कि वे समस्या के वास्तविक स्वरूप से परिचित होने के लिए इस पुस्तक को पढ़ें। आवश्यक इच्छा-शक्ति हो तो परिस्थिति के निराकरण हेतु सुझाये संभावित उपायों को अपनायें। हम आशावान हैं कि सरकार की नीतियों में अपेक्षित परिवर्तन आयेगा और अंत में राष्ट्रीय पक्ष विजयी होगा।

—राजेन्द्र सिंह

(सह-सरकार्यवाह, रा. स्व. संघ)

अनुक्रमणिका

	आमुख	५
१.	महर्षि कश्यप की पावन भूमि कश्मीर	९
२.	पाकिस्तानी आक्रमण और भारत में विलय	१३
३.	जनमत-संग्रह का प्रस्ताव विधि-विरुद्ध	२३
४.	अवांछनीय नेतृत्व	३३
५.	धारा ३७०	४९
६.	शेख के पश्चात्	५९
७.	वर्तमान स्थिति	६९
८.	सिंहावलोकन	७६
	परिशिष्ट	८२

महर्षि कश्यप की पावन भूमि कश्मीर

समुद्र - तल से ५००० फीट की ऊँचाई पर, हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों से घिरी, कश्मीर की मनमोहक घाटी न केवल अपनी नैसर्गिक सुन्दरता के लिए, अपितु भारतीय संस्कृति के एक समृद्ध केन्द्र के रूप में भी प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है।

इस सुरम्य घाटी के साथ पौराणिक ऋषि कश्यप के लोकोपकारी कर्तृत्व की एक कथा जुड़ी हुई है। नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर घाटी के स्थान पर पहले एक विशाल झील थी। महर्षि कश्यप ने वराहमूल (वर्तमान बारामूला) के समीप पर्वत को काटकर उस जलराशि के निकास का एक मार्ग बना दिया। झील का जल वितस्ता (वर्तमान झेलम) में बह जाने से उस झील का तल यहाँ-वहाँ कुछ छोटी-छोटी झीलों से युक्त एक रमणीक घाटी में परिणत हो गया, जिसे लोगों ने नाम दिया कश्यप मर्ग। और वही आज का कश्मीर है। उसकी वर्तमान राजधानी श्रीनगर को मौर्य सम्राट् अशोक ने बसाया था। ज्ञात इतिहास के अनुसार महाभारत-काल में और उससे पूर्व कश्मीर वैदिक धर्म से ओत-प्रोत रहा। कालान्तर में वह वीर शैव मत के प्रमुख केन्द्र के रूप में भी चर्चित हुआ। रूढ़ियों को तोड़कर उदार मत पर चलना कश्मीर की पुरानी परम्परा रही है। यही वह प्रदेश है जहाँ द्वापर के अन्त में राजा के युद्ध में मारे जाने और राजकुमार के अल्पवयस्क होने पर भगवान् कृष्ण ने पुरोहितों से रानी यशोवती का राज्याभिषेक करवा दिया था।

अन्तर्वत्नी तस्य पत्नी तदा यदुकुलोद्वहः।
राज्ये यशोवतीं नाम द्विजैः कृष्णोभ्यषेचयत्॥ (राजतरंगिणी ३/७०)

यही प्रदेश है जहाँ बौद्ध मत कट्टर होते जा रहे हीनयान से उदार महायान मत में परिणत होकर फला-फूला। कुशाण सम्राट् कनिष्क ने बारामूला के पास कनिष्कपुर (वर्तमान कंसपुरा) नाम से महायान मत का केन्द्र तो स्थापित किया ही, घाटी में अनेक बौद्ध विहार भी बनवाये। उसी के काल में कश्मीर में विशाल बौद्ध सम्मेलन भी हुआ।

आद्य शंकराचार्य की दिग्विजय में कश्मीर एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव बना। यहीं शारदामठ में विभिन्न दर्शनों के विद्वानों से शास्त्रार्थ करके उन्होंने वेदान्त का डंका बजाया और सर्वज्ञ पीठ पर सम्मानित हुए।

कश्मीर को कल्हण और रत्नाकर जैसे महान् इतिहासकार साहित्यकारों को जन्म देने का गौरव प्राप्त है। मुस्लिम आक्रमण से पूर्व के कश्मीर का प्रामाणिक परिचय कल्हण के प्रसिद्ध संस्कृत काव्य-ग्रन्थ 'राजतरंगिणी' से ही मिलता है।

आठवीं शताब्दी में हुए महाराजा ललितादित्य को आज भी पूरे कश्मीर में बड़े सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है। उनके शासनकाल में राज्य की श्री-समृद्धि की ख्याति दूर-दूर तक पहुँच गयी, जिसका एक परिणाम यह भी हुआ कि अरबी मुस्लिम लुटेरों ने पंजाब होकर कश्मीर पर आक्रमण किया। किन्तु ललितादित्य के पराक्रम के सामने वे टिक न सके। उन्हें पराजित करके बन्दी बनाकर ललितादित्य ने उनके सिर घुटवा दिये और उसी रूप में वापस जाने का आदेश दिया ताकि वे दुबारा राज्य की ओर कुदृष्टि डालने का साहस न कर सकें। राजा ललितादित्य का शासन कश्मीर घाटी के बाहर भी बहुत बड़े क्षेत्र पर था और प्रभाव चारों दिशाओं में दूर-दूर तक था। मध्य भारत के यशोवर्मन से उनकी प्रगाढ़ मित्रता थी और इन दोनों ने मिलकर अरब आक्रान्ताओं के पैर देश में आगे बढ़ने नहीं दिये। ललितादित्य के शासनकाल में ही कश्मीर के प्रख्यात तीर्थ मार्तण्ड-मन्दिर का निर्माण हुआ जिसके खण्डहर भारत की महान् सांस्कृतिक सम्पदा के प्रतीक के रूप में आज भी जाने जाते हैं। देश के कोने-कोने से लोग आज भी उसके दर्शनार्थ पहुँचते हैं।

कश्मीर राज्य का यह प्रभाव ११वीं शताब्दी के प्रसिद्ध राजा अवन्तिवर्मन के काल तक अक्षुण्ण रहा। तीन सौ वर्षों तक ललितादित्य द्वारा पराजित अरबी लुटेरों की सन्तति को भी कश्मीर की ओर आँख उठाकर देखने का साहस नहीं हुआ।

दुर्दिनों का आरम्भ

इसके पश्चात् १४ वीं शताब्दी के मध्य में कश्मीर के इतिहास में एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई। सन् १३०१ ई. में कश्मीर का राज्य सहदेव नामक शासक ने संभाला। उसने राजा रंचनशाह की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी कोटारानी से विवाह किया था। किन्तु सहदेव अधिक दिन राज्य नहीं कर सका। उसके बाद उसके भाई उदयनदेव ने राज्य संभाला। किन्तु वह भी कुछ ही समय जीवित रहा

तो कोटारानी ने अपने पुत्र के नाम पर स्वयं शासन संभाल लिया। उसके दरबार में शाहमीर नामक एक खुरासानी मुसलमान दरबारी था। राजा सहदेव के समय दरबार में सम्मिलित किया गया यह मुसलमान बहुत महत्त्वाकांक्षी था। धीरे-धीरे उसका जोर बढ़ता रहा और अनुकूल समय देखकर सन् १३३९ ई. में उसने विद्रोह करके कोटा-रानी को अपदस्थ कर दिया। उसने रानी से विवाह करने का प्रस्ताव रखा, जिसे रानी ने अस्वीकार कर दिया। तब शाहमीर ने उसको जबरन अपने हरम में डाल लिया। दूसरे दिन रानी ने आत्महत्या कर ली। इस प्रकार कश्मीर का शासन पहली बार किसी मुसलमान के हाथों में गया। उसी के बाद से कश्मीर में मुसलमानों का मजहबी उन्माद अपने कहर ढाने लगा। शाह मीर के उत्तराधिकारी सिकन्दर ने घाटी के हिन्दुओं का इतना व्यापक नरसंहार किया कि डल झील हिन्दुओं के शवों से पट गयी। मृत शरीरों के ढेर से वहाँ एक बाँध जैसा बन गया। उसका अवशेष आज भी झील के मध्य में देखा जा सकता है। बट मजार अर्थात् 'पंडितों की कब्र' के नाम से पुकारते हैं। उस समय कुछ पण्डितों ने भागकर जम्मू में शरण ले ली और कालान्तर में वापस गये। आज उन्हीं की सन्तानें कश्मीर में इने-गिने हिन्दुओं के नाम पर शेष हैं।

देश के अन्य भागों की भाँति कश्मीर को भी मुगलों ने हथिया कर अपनी रंगस्थली बनाया। मुगलों के दुर्बल पड़ने पर पठानों ने वहाँ अधिकार जमाया और पठानों से भी सन १८२० ई. में महाराजा रणजीतसिंह ने छीनकर कश्मीर पर पुनः हिन्दु शासन स्थापित किया।

पुनरुत्कर्ष

महाराजा रणजीतसिंह की सेना में जम्मू के डोगरा राज-परिवार के एक सेनानायक थे गुलाबसिंह। साम्राज्य-विस्तार में गुलाबसिंह के योगदान का सम्मान करते हुए रणजीतसिंह ने उन्हें लाहौर दरबार के अन्तर्गत जम्मू के राजा के रूप में मान्यता दे दी। गुलाबसिंह ने अपने प्रसिद्ध सेनापति जोरावरसिंह की सहायता से लद्दाख को जीतकर जम्मू राज्य की सीमाएँ चीन और तिब्बत की सीमाओं से मिला दीं।

गुलाबसिंह की शक्ति और प्रभाव को स्वीकार करते हुए १८४६ में अंग्रेजों ने उनसे अमृतसर में एक सन्धि की, और जम्मू-कश्मीर राज्य को लाहौर दरबार से

पृथक् मान्यता देते हुए उन्हें स्वतंत्र शासक स्वीकार किया। अमृतसर सन्धि के अनुसार उनके राज्य में कश्मीर घाटी सहित रावी और झेलम के बीच का वह समूचा पर्वतीय क्षेत्र भी समाहित माना गया, जो लाहौर दरबार ने एक सन्धि के अन्तर्गत अंग्रेजों को दे दिया था। यद्यपि कश्मीर के सूबेदार ने महाराजा की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने का यत्न किया, किन्तु महाराजा की सेना ने देखते ही देखते उसे हथियार डालने को विवश कर दिया।

कुछ समय पश्चात् गुलाबसिंह ने गिलगित और बलतिस्तान को भी अपने अधिकार में ले लिया। इस प्रकार वे राजनीतिक सन्धियों और अपनी सैन्य-शक्ति के आधार पर जम्मू-कश्मीर, मीरपुर, मुजफ्फराबाद, गिलगित, बलतिस्तान और लद्दाख तक के सम्पूर्ण क्षेत्र के अधिकार-सम्पन्न राजा रहे। गुलाबसिंह के अन्तिम उत्तराधिकारी महाराजा हरिसिंह ने २६ अक्टूबर १९४७ को भारतीय स्वाधीनता अधिनियम १९४७ के अन्तर्गत अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए अपने राज्य का भारत में विलय किया।

वह भयंकर भूल

कश्मीर घाटी की वर्तमान विषम स्थिति को, जिस अति दुर्भाग्यपूर्ण घटना का प्रतिफल कहना गलत नहीं होगा, वह महाराजा गुलाबसिंह के उत्तराधिकारी महाराजा रणवीर सिंह के समय से जुड़ी हुई है। रणवीर सिंह एक कुशल शासक और योद्धा थे। राज्य का उन्होंने सर्वतोमुखी विकास किया था। उस समय कश्मीर के मुसलमानों ने महाराजा से अनुरोध किया कि वे अपने पुराने हिन्दू समाज में वापस लौटना चाहते हैं। दूरदर्शी रणवीरसिंह और उनके अनेक सलाहकारों ने मुसलमानों की इस पहल का देश के व्यापक हित में स्वागत किया। किन्तु कुछ कश्मीरी पण्डितों की संकीर्णता आड़े आ गयी। उनमें से कुछ ने महाराजा को धमकी दी कि यदि मुसलमानों को हिन्दू समाज में वापस लिया गया तो वे आत्महत्या कर लेंगे और राजा को ब्रह्महत्या का दोष लगेगा। धर्मभीरु राजा को इस धमकी ने झुका दिया और कश्मीर घाटी के मुस्लिम समुदाय को राष्ट्र की मुख्यधारा में वापस लाने का एक स्वर्णिम अवसर हाथ से निकल गया। यदि यह दुर्घटना न होती, तो कश्मीर समस्या की आज जो उलझनें हैं, वे पैदा ही न होतीं।

पाकिस्तानी आक्रमण और भारत में विलय

इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि अपने देश के इस सीमावर्ती और अत्यंत संवेदनशील भाग जम्मू-कश्मीर के सामरिक महत्त्व की जानकारी सामान्य जनता के साथ-साथ राष्ट्र के अनेक प्रबुद्ध जनों को भी नहीं है। इसी कारण वे वहाँ की राजनीतिक हलचलों का सही मूल्यांकन नहीं कर पाते। किन्तु अमरीका, रूस, चीन और ब्रिटेन जैसे प्रमुख राष्ट्र उसके महत्त्व को भलीभाँति जानते हैं और इसलिए उसे अपने प्रभावक्षेत्र में रखने में गहरी रुचि रखते हैं और दाँवपेंच चलाते रहते हैं।

१५ अगस्त १९४७ को ब्रिटिश सरकार ने भारत को हिन्दुस्थान और पाकिस्तान के दो स्वतंत्र राज्यों में बाँटा था तथा देश की सभी ६ सौ रियासतों को भी साथ ही साथ स्वतन्त्र कर दिया था। उस समय जम्मू-कश्मीर का राज्य महाराजा हरिसिंह जैसे एक श्रेष्ठ देशभक्त के पूर्ण नियन्त्रण और अधिकार में था। महाराजा एक अत्यंत जागरूक नरेश थे। १९३१ में लंदन में गोलमेज सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसमें भारत के सब राजनीतिक दलों के नेताओं, महात्मा गांधी तथा भारतीय राजाओं के प्रतिनिधि के रूप में नरेंद्र-मण्डल (चैम्बर आफ प्रिंसेज) के प्रधान महाराजा हरिसिंह ने भाग लिया। महात्मा गांधी ने भारत की स्वतंत्रता का पक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु अंग्रेजों को अनपेक्षित स्थिति का सामना करना पड़ा जब नरेन्द्र मण्डल के प्रधान के रूप में महाराजा हरिसिंह ने भारत की स्वतन्त्रता के विषय में महात्मा गांधी का समर्थन कर अपनी देशभक्ति का उद्घोष किया। अंग्रेजों ने महाराजा के इस 'अपराध' को कभी क्षमा नहीं किया और उनकी सत्ता को दुर्बल करने के लिए शेख अब्दुल्ला के माध्यम से विभिन्न षड्यन्त्र करते रहे।

महाराजा असमंजस में

१९४७ में देश के स्वतन्त्र होते ही भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अनुसार लगभग सभी देशी राज्यों ने भारत या पाकिस्तान में अपना विलय कर दिया, किन्तु महाराजा हरिसिंह एक असमंजस की स्थिति में थे, जिसके निम्न कारण थे :-

१. पाकिस्तान के राजनीतिक वातावरण और हिन्दुत्व-विरोधी रवैये को देखते हुए महाराजा अपने राज्य को पाकिस्तान में मिलाने के लिए सहमत नहीं थे, क्योंकि उसका सीधा परिणाम उनके राज्य की हिन्दू जनता का सर्वनाश ही होता।

२. महाराजा अपने राज्य को भारत में मिलाने से भी हिचक रहे थे, क्योंकि तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री के प्रति उन्हें बड़ी शंकाएं थीं। उन दोनों के बीच मानसिक वैमनस्य की स्थिति बनी हुई थी। उसका कारण यह था कि जम्मू-कश्मीर में उत्तरदायी शासन स्थापित करने के नाम पर १९४६ में 'नेशनल कान्फ्रेंस' के नेता शेख अब्दुल्ला ने 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ किया था। इस आन्दोलन का वास्तविक उद्देश्य उत्तरदायी शासन की स्थापना या ब्रिटिश राज्य की समाप्ति नहीं, वरन् महाराजा हरिसिंह को जम्मू-कश्मीर से निकाल बाहर करना था। १९४६ के मध्य में महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को बन्दी बना लिया और तीन वर्ष के कारावास का दण्ड देकर उसे जेल में बन्द कर दिया गया। किन्तु श्री जवाहर लाल नेहरू ने शेख अब्दुल्ला की वास्तविक अभिलाषा को न समझते हुए, कश्मीर जाकर आन्दोलन में भाग लेने की घोषणा कर दी। हरिसिंह ने नेहरू के कश्मीर-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जब श्री नेहरू ने इस प्रतिबन्ध को तोड़ते हुए कश्मीर में प्रवेश किया तो उन्हें कोहाला में बन्दी बनाकर नयी दिल्ली भेज दिया गया। इसके कुछ महीने पश्चात् नेहरू भारत के प्रधानमन्त्री बने और उन्होंने कश्मीर राज्य के विषय को अपने ही हाथ में रखा, जब कि सरदार पटेल को वह काम दिया जाना चाहिए था। श्री नेहरू उक्त घटना से उत्पन्न कटुता को भुला न सके। इन परिस्थितियों में महाराजा हरिसिंह के मन में राज्य का भारत में विलय करने के बारे में हिचक उत्पन्न हो गयी।

३. भारत के साथ राज्य का विलय करने में एक और बड़ी बाधा थी। यद्यपि जम्मू-कश्मीर राज्य भारतीय क्षेत्र से भौगोलिक रूप में जुड़ा हुआ था, किन्तु बीच में यातायात का कोई समुचित मार्ग तब तक नहीं बना था। एकमात्र मार्ग—वह भी कच्चा और वर्षा के दिनों में रुद्ध हो जाने वाला—गुरदासपुर जिले में से होकर था, जिसके बारे में ६ अगस्त १९४७ तक अंग्रेजों ने यह निर्णय नहीं किया था कि वह भारत में रहेगा या पाकिस्तान में। इस कारण उसके आधार पर कोई योजना नहीं सोची जा सकती थी। बारहों मास खुला रहने वाला जो दूसरा

मार्ग था, वह रावलपिंडी-सियालकोट अर्थात् पाकिस्तानी क्षेत्र में से होकर जाता था। इसी मार्ग से राज्य की सभी जीवनोपयोगी वस्तुओं का आयात होता था। यदि महाराजा राज्य का भारत में विलय करते तो राज्य की जनता को अपनी जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए तरस जाना पड़ता, क्योंकि पाकिस्तान भारत से आने वाली किसी भी सामग्री के परिवहन के लिए अपने क्षेत्र के उस मार्ग का उपयोग न करने देता और राज्य पाकिस्तान की आर्थिक नाकेबन्दी में फँस जाता। ये वे परिस्थितियाँ थीं जिनके कारण महाराजा भारत में विलय की इच्छा रखते हुए भी अपने हाथ बँधे हुए पाते थे।

४. महाराजा का असंमजस बनाये रखने में तत्कालीन वाइसराय माउंटबेटन की कूटनीति भी काम कर रही थी।

माउंटबेटन जानते थे कि यदि जम्मू-कश्मीर राज्य का विलय भारतीय संघ में हो गया, तब सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण गिलगित का क्षेत्र आंग्ल-अमेरिकी गुट के प्रभाव से निकल जायेगा और सोवियत संघ की सैनिक घेराबंदी की योजना साकार नहीं हो सकेगी। इसके विपरीत, पाकिस्तान में कश्मीर का विलय होने से उन्हें यह सुविधा उपलब्ध रहेगी। वे एक कुशल सेनाधिकारी के साथ ही साथ कूटनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक की अंग्रेज पत्नी के माध्यम से काक को और काक के माध्यम से महाराजा हरिसिंह को काफी समय तक भारतीय संघ में शामिल होने से रोकने में सफलता प्राप्त की।

शेख अपनी घात में

इस राजनीतिक परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए शेख अब्दुल्ला भी अपनी चालें चल रहा था। मुसलमानों का नेता बनकर वह पाकिस्तान के साथ साँठगाँठ कर रहा था कि यदि जिन्ना उसको कश्मीर का सर्वेसर्वा मान ले तो वह पाकिस्तान के पक्ष में अपना राजनीतिक दबाव डालने के लिए तैयार था। महाराजा के सामने यह भी संकट था कि यदि उन्होंने भारत के साथ राज्य का विलय किया तो राज्य का मुस्लिम समुदाय और शेख अब्दुल्ला उसमें हर संभव उपाय से विघ्न-बाधा उत्पन्न करेगा।

यथास्थिति समझौता

अपने राज्य का विलय भारत में चाहते हुए भी, महाराजा हरिसिंह उस दिशा

में कोई पग नहीं उठा सके और १५ अगस्त १९४७ को उन्होंने भारतीय संघ तथा पाकिस्तान दोनों से विलय-संधि के स्थान पर 'यथास्थिति समझौता' (Standstill Agreement) करने की पेशकश की। पाकिस्तान ने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया, क्योंकि इससे राज्य का भारत में विलय रुकता था। किन्तु भारत सरकार ने न उसे स्वीकार किया और न ही अस्वीकार। उसने रियासती विषयों के राज्यमंत्री गोपालस्वामी आयंगर को महाराजा से वार्ता करने के लिए श्रीनगर भेजा। वरिष्ठ कांग्रेसी नेता आचार्य कृपलानी भी महाराजा से बातचीत करने वहाँ पहुँचे। इन राजनीतिक यात्राओं से कोई ठोस परिणाम नहीं निकले।

संघ सजग था

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जिसका कार्य राज्य में सन् १९३९ में प्रारंभ होकर १९४७ तक पूरे राज्य में सब ओर फैल गया था, इस पूरी स्थिति पर दृष्टि रखे हुए था। सर्वश्री बलराज मधोक, जगदीश अब्रोल, हरीश भनोट आदि जैसे संघ के जागरूक कार्यकर्ता शेख अब्दुल्ला की नेशनल कान्फ्रेंस और रामचन्द्र काक की नीयत पहचान गये थे, और साथ ही उनको ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा पाकिस्तान की मिलीभगत का आभास हो गया था। उन्होंने महाराजा को उसकी जानकारी दी। उससे पूर्व जून १९४७ में जम्मू-कश्मीर के संघचालक पं. प्रेमनाथ डोगरा तथा प्रसिद्ध एडवोकेट राय बहादुर बद्रीदास ने महाराजा को अपने राज्य का भारत में विलय करने की सलाह दी। महात्मा गांधी ने श्रीनगर जाकर महाराजा हरिसिंह से इस बारे में बातचीत की। किन्तु इन बातों का जो परिणाम होना चाहिए था, वह नहीं हुआ।

जिन्ना की चाल विफल

पाकिस्तान किसी भी उपाय से जम्मू-कश्मीर राज्य को हथियाने के लिए अधीर हो रहा था। 'यथास्थिति समझौते' के बावजूद, पाकिस्तान के गवर्नर जनरल मोहम्मद अली जिन्ना की ओर से उनका निजी सैनिक सचिव, जो कि अंग्रेज था, तीन बार जिन्ना के व्यक्तिगत पत्र लेकर श्रीनगर गया। उसमें महाराजा हरिसिंह से अनुरोध किया गया था कि जिन्ना का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है, उनके डाक्टरों ने उनको गर्मियों का समय श्रीनगर में बिताने की सलाह दी है। वास्तविक योजना यह थी कि जिन्ना स्वयं श्रीनगर में उपस्थित रहकर जम्मू-कश्मीर राज्य को पाकिस्तान में शामिल करने के लिए महाराजा पर दबाव डालेंगे और राज्य का प्रधानमंत्री रामचन्द्र

काक भी महाराजा को उसके लिए राजी करने का प्रयास करेगा। यदि महाराजा फिर भी अपने राज्य का विलय पाकिस्तान में करने के लिए सहमत न हुए तो उन्हें गिरफ्तार करके विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया जायेगा। सौभाग्यवश महाराजा हरिसिंह जिन्ना के उस कुटिल जाल में नहीं फँसे और उन्होंने नम्रता किन्तु दृढ़तापूर्वक जिन्ना को श्रीनगर में गर्मियाँ बिताने का निमंत्रण देने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि एक पड़ोसी राज्य के गवर्नर जनरल जैसी श्रेष्ठ हस्ती को अपने क्षेत्र में ठहराने की सारी औपचारिकताएँ तथा उसके अनुरूप सुविधा-व्यवस्थाएँ वे नहीं कर सकेंगे।

अपनी कुत्सित योजना को इस प्रकार विफल होते देखकर पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर की आर्थिक नाकेबन्दी प्रारंभ कर दी और पाकिस्तान से होकर जाने वाले सभी मार्गों से खाद्यान्न, कपड़ा आदि सभी जीवनोपयोगी वस्तुओं के कश्मीर में पहुँचने पर रोक लगा दी। कश्मीर से फलों तथा अन्य व्यापारिक वस्तुओं का निर्यात बन्द कर दिया गया। डाक-तार व्यवस्था भी ठप्प हो गयी। इन घटनाओं से काक की 'यथास्थिति योजना' की निरर्थकता तो सिद्ध हो ही गयी, उसी के साथ उसके द्वारा खेला जा रहा पाकिस्तानी खेल भी उजागर हो गया। महाराजा ने १२ अगस्त १९४७ को काक को पदमुक्त करके उसके स्थान पर जनरल जनक सिंह को अन्तरिम प्रधान मन्त्री नियुक्त किया।

जिन्ना के भेजे हुए दूत व सन्देशों और राज्य की आर्थिक नाकेबन्दी का दबाव जब महाराजा को राज्य का विलय पाकिस्तान में करने के लिए विवश नहीं कर सका, तब जिन्ना के निर्देश पर जम्मू क्षेत्र के सीमावर्ती भागों में पाकिस्तानी कबाइलियों ने घुसपैठ आरम्भ की। उनका लक्ष्य था—क्षेत्र में आगजनी व लूटमार करते हुए हिन्दुओं को आतंकित करना और जम्मू-कश्मीर क्षेत्र को उनसे खाली कराते हुए पाकिस्तानी कब्जा स्थापित करना। उन कबाइलियों को पाकिस्तानी सेना ने हथियार और गोला-बारूद से लैस किया और उन्होंने सीमा के साथ लगे हुए हिन्दू गाँवों पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। चारों ओर हत्याएँ और लूटपाट प्रारम्भ हो गयी।

महाजन प्रधानमन्त्री बनाये गये

परिस्थिति की गम्भीरता को देखते हुए महाराजा राज्य का प्रधानमन्त्री पद श्री मेहरचन्द महाजन को देना चाहते थे। किन्तु वे उस समय पंजाब उच्च न्यायालय

के न्यायाधीश होने के कारण कश्मीर नहीं पहुँच पा रहे थे। वास्तविकता यह है कि शेख अब्दुल्ला नहीं चाहता था कि महाजन जैसा दूरदर्शी व प्रभावी व्यक्ति रियासत का प्रधानमंत्री बने। इसलिए उसने सब प्रकार से चेष्टाएँ की थीं कि महाजन पंजाब हाई कोर्ट से मुक्त न हो सकें। सरदार पटेल उसकी चाल समझ रहे थे। यह उनके ही विशेष प्रयत्नों का फल था कि महाजन उच्च न्यायालय के दायित्व से मुक्त होकर श्रीनगर जा सके। तब महाराजा ने उनको १५ अक्तूबर को राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया। यह स्पष्ट था कि जब तक राज्य का विलय भारत में नहीं होता, भारत अपनी सेनाएँ राज्य की सुरक्षा के लिए नहीं भेज पायेगा। इसलिए महाराजा का विलय हेतु तैयार होना समय की सबसे पहली आवश्यकता थी। इसी के साथ यह भी आवश्यक था कि राज्य की हिन्दू जनता शत्रु का मुकाबला करने के लिए खड़ी हो तथा दृढ़ और एकजुट रहे।

श्री गुरु जी महाराजा से मिले

सरदार पटेल और श्री महाजन को यह जानकारी थी कि विलय हेतु महाराज़ा की हिचक को दूर करने तथा समाज को आवश्यकतानुरूप तैयार करने में संघ के कार्यकर्ता उपयोगी भूमिका निभा सकते हैं। इस हेतु उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक श्री गुरु जी को विश्वास में लेकर कार्ययोजना को सफल करने का निश्चय किया। श्री महाजन की व्यवस्था के अनुसार अक्टूबर १९४७ में श्री गुरुजी श्रीनगर पधारे और श्री महाजन के साथ महाराजा हरिसिंह से मिले।

उस वार्ता में प्रधानमंत्री मेहरचन्द महाजन सम्मिलित थे। यह देश का सौभाग्य ही कहा जायेगा कि श्री गुरुजी के सत्परामर्श ने एक ओर जहाँ महाराजा की विलय सम्बन्धी हिचक को दूर किया, वहीं राज्य की हिन्दू जनता में आवश्यक आत्म-विश्वास एवं संकल्प-शक्ति का संचार किया। वे कमर कसकर राज्य की रक्षा के लिए सामने आये।

बर्बर पाकिस्तानी आक्रमण

बाजी को अपने हाथ से खिसकते देखकर पाकिस्तान ने महाराजा हरिसिंह एवं प्रधानमंत्री महाजन के अपहरण की योजना बनायी, जिसे २१ अक्टूबर के दिन उनकी भिम्बर यात्रा के समय कार्यान्वित किया जाना था। किन्तु महाराजा के प्रवास-कार्यक्रम में आकस्मिक परिवर्तन हो जाने के कारण वह षड्यंत्र सफल नहीं हुआ।

पाकिस्तानी तत्त्वों का भिंबर डाक बंगले पर, जहाँ महाराजा ठहरने वाले थे, भीषण आक्रमण हुआ और उसको जला दिया गया। श्री महाजन के साथ महाराजा उससे पहले ही भिंबर से जम्मू वापस आ गये थे। उन्होंने रास्ते में सड़क के दोनों किनारों पर पाकपरस्त तत्त्वों एवं घुसपैठियों द्वारा ज़लाये गये घरों को देखा। पुंछ सेक्टर के कर्नल नारायण सिंह के साथ महाराजा पाकिस्तानी हमले के संबंध में परामर्श कर ही रहे थे कि पाकिस्तानी कबाइलियों की सेना राज्य की उत्तर-पश्चिम सीमा से घुस आयी। महाराजा को यह भी सूचन मिली कि उनकी सेना के सारे मुसलमान सैनिक अपने शस्त्रास्त्र सहित पाकिस्तानी आक्रमणकारियों के साथ मिल गये हैं और उन्होंने अपने हिन्दू सैनिक सहयोगियों को मौत के घाट उतार दिया है।

महाराजा ने विलय-प्रस्ताव भेजा

इस गंभीर परिस्थिति की जानकारी महाराजा ने २४ अक्टूबर के दिन अपने उप-प्रधानमंत्री बत्रा के हाथों पत्र भेजकर भारत के प्रधानमंत्री पं. नेहरू और उप-प्रधानमंत्री पटेल को दी तथा अनुरोध किया कि राज्य को पाकिस्तानी आक्रमण से बचाने के लिए तुरन्त कार्यवाही की जाये। श्री महाजन ने भी उनको इसी आशय के निजी पत्र भेजे। महाराजा ने अपने पत्र के साथ विलय का प्रस्ताव भी भेजा। ब्रिटिश प्रधानमंत्री को भी तार द्वारा संदेश भेजा गया। किन्तु दो दिन तक कहीं से कोई उत्तर नहीं आया। इस बीच ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह ने उड़ी के पास पाकिस्तानी आक्रमणकारियों को रोके रखा, परन्तु गिनती के सिपाही उतनी बड़ी पाकिस्तानी सेना को कितनी देर तक रोक सकते थे। घाटी के उस संवेदनशील क्षेत्र में राज्य की सेना की समुचित तैयारी नहीं थी। उसका कारण यह था कि महाराजा का अंग्रेज सेनाध्यक्ष शत्रुओं से मिल गया था। उसने जान बूझकर डोगरा सेना को पूरे राज्य में इस प्रकार छितरा दिया था कि घाटी में मुट्ठी भर ही सैनिक रह गये थे। पाकिस्तानी हमलावर बिना रुकावट बारामूला के निकट तक पहुँच गये। चारों ओर दूर-दूर तक लूटमार, अग्निकाण्ड तथा बलात्कार की बर्बर घटनाएँ होने लगीं। हमलावरों की शैतानियत अपनी चरम सीमा को पहुँचीं। गाँव-गाँव में सामूहिक बलात्कार की दरिंदगी आरंभ हो गयी। कई लुटेरे लूट का माल और नौजवान लड़कियों को अपने गाँव पहुँचाने में लगे कि माल छोड़कर पुनः लौट आते हैं। स्थिति की भीषणता को देखते हुए राज्य के सैनिक अधिकारियों ने श्रीनगर के संघ-कार्यकर्ताओं का सहयोग लेने का निर्णय किया। उनको राजकीय शस्त्रागार में जितनी भी बंदूकें उपलब्ध थीं, दे

दी गयीं और उनके प्रयोग का प्रशिक्षण भी दिया गया। संघ-कार्यकर्ताओं ने सारे श्रीनगर और विशेष रूप से उसके हवाई अड्डे की रक्षा का कार्य संभाल लिया। वे २७ अक्टूबर के दिन तक, जब तक भारतीय सेना श्रीनगर पहुँच नहीं गयी, मोर्चे पर डटे रहे। इस दिन का एक विशेष महत्त्व यह भी था कि जिन्ना इस दिन ईद का जश्न मनाने के लिए अपनी सेना के साथ श्रीनगर पहुँचने वाला था। किन्तु उसके पहले ही बाजी पलट गयी। महाराजा ने रियासत पर पाक आक्रमण की जानकारी पहले ही दिल्ली में दी थी। महाराजा द्वारा भेजा गया विलय-प्रस्ताव और महाजन के पत्र दिल्ली पहुँच चुके थे।

विलय-प्रक्रिया पूर्ण : रक्षा अभियान आरम्भ

परिणामतः २५ अक्टूबर को भारत के रियासती मंत्रालय के सचिव वी. पी. मेनन हवाई जहाज द्वारा श्रीनगर पहुँच गये। तुरन्त विलय का एक दस्तावेज तैयार किया गया जिसे महाराजा ने २६ अक्टूबर को हस्ताक्षर करके अपने प्रधानमंत्री श्री महाजन के द्वारा श्री मेनन के साथ दिल्ली भेजा। तभी श्री मेनन ने महाराजा को सरदार पटेल का यह परामर्श भी सूचित किया था कि वे श्रीनगर छोड़कर जम्मू पहुँचें। श्रीनगर की तुलना में जम्मू से सम्पर्क रखना अधिक सुविधाजनक था। उनके और भारत के हितों की रक्षा के लिए यह नितान्त आवश्यक था। उसी दिन अर्थात् २६ अक्टूबर १९४७ को जम्मू-कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री श्री महाजन द्वारा विलय-पत्र प्रस्तुत कर देने (देखिए परिशिष्ट १ और २) और भारत सरकार द्वारा उसे अविलंब स्वीकार कर लिये जाने से जम्मू-कश्मीर राज्य का उसी दिन भारत में विधिवत् विलय हो गया और अगले दिन २७ अक्टूबर से ही भारतीय सेनाएँ हवाई मार्ग द्वारा कश्मीर पहुँचने लगीं। जिन्ना को जब यह समाचार मिला तो उसको २७ अक्टूबर को श्रीनगर में ईद का जश्न मनाने का विचार विवश होकर छोड़ देना पड़ा और उस अवसर के लिए पाक सेना के दो ब्रिगेड जम्मू और श्रीनगर भेजने का अपना पूर्व आदेश भी वापस लेना पड़ा। भारतीय सेना श्रीनगर पहुँचते ही पाकिस्तानी आक्रमणकारियों पर टूट पड़ी। भयंकर संग्राम हुआ। पाकिस्तानियों को मार भगाया गया। किन्तु उसके लिए अनेक बलिदान देने पड़े। कर्नल डी. आर. राय और मेजर सोमनाथ शर्मा जैसे वीर योद्धा मारे गये। परन्तु श्रीनगर बच गया। यदि पाकिस्तानी आक्रमणकारी बारामूला में लूटमार और बलात्कार में कुछ दिन न गँवा देते तो वे श्रीनगर पहुँच गये होते, और तब परिस्थिति ने क्या मोड़ लिया होता, कहना कठिन है।

विलय परिपूर्ण था

इस विवरण से यह तथ्य पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि पाकिस्तान कश्मीर में आक्रमणकारी है और इसलिए उसे जम्मू-कश्मीर के विषय में बोलने का कोई नैतिक या सांविधानिक अधिकार नहीं है। स्वयं पाकिस्तानी प्रतिनिधि को इसकी सच्चाई को संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्वीकार करना पड़ा था। १३ अगस्त १९४८ के सुरक्षा परिषद् के जिस प्रस्ताव का हवाला देकर पाकिस्तान जनमत-संग्रह का रोना रोता रहता है, उसी प्रस्ताव में पाकिस्तान को अपनी सेनाएँ जम्मू-कश्मीर राज्य से वापस हटाने को कहा गया था। उस प्रस्ताव के निम्न शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं :

"जम्मू-कश्मीर राज्य के क्षेत्र में पाकिस्तानी सैनिकों की उपस्थिति से परिस्थिति में बहुत अधिक अंतर आ गया है और अब ..... पाकिस्तान इस बात से सहमत हो गया है कि वह उक्त राज्य (जम्मू-कश्मीर) से अपने सभी सैनिक वापस बुला लेगा।"

यह स्मरणीय है कि इस प्रस्ताव पर पाकिस्तान ने अपनी सहमति दी थी। प्रस्ताव के उपर्युक्त वाक्य स्पष्ट रूप से जताते हैं कि सुरक्षा परिषद् ने पाकिस्तान को जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में आक्रमणकारी माना है, इसीलिए उसे राज्य के २/५ भाग पर से अपनी सेनाओं को वापस बुलाना स्वीकार करना पड़ा था। किन्तु उसने अपने इस अभिवचन को आज तक पूरा नहीं किया है। राज्य में भारतीय सेना की उपस्थिति को चुनौती नहीं दी जा सकती है, क्योंकि २६ अक्टूबर १९४७ को महाराजा हरिसिंह ने अपने राज्य का भारत में विलय करने हेतु संबंधित दस्तादेज पर हस्ताक्षर कर दिये थे और उसी दिन विलय-पत्र भारत को सौंप दिया गया था। उसी दिन भारत सरकार द्वारा उसे स्वीकार कर लिये जाने और २७ अक्टूबर १९४७ को उस पर गवर्नर जनरल के हस्ताक्षर हो जाने के साथ जम्मू-कश्मीर भारत का अविभाज्य अंग बन गया था। जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में इस विधिसम्मत विलय को स्वयं सुरक्षा परिषद् ने स्वीकार किया है। अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विधिवेत्ता पॉटर, एबेण्ड्रोथ, एफ. जे. बरबर, दुर्गादास बसु, न्यायमूर्ति ए. एन. ग्रोवर, बी. आर. चौहान आदि जैसे विद्वानों ने भी विलय की वैधता को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। यहाँ तक कि कराची से प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'संयुक्त राष्ट्रसंघ और कश्मीर' में पृष्ठ ७६ पर पाकिस्तानी विद्वान् डॉ. एम. एम. आर. खान ने भी जम्मू-कश्मीर

का नाम न लेते हुए महाराजा हरिसिंह द्वारा अपने राज्य का भारत में विलय किये जाने की सच्चाई को स्वीकार किया था। डॉ. खान ने इस संबंध में लिखा है कि:

"स्वाधीनता के बाद भारत तथा पाकिस्तान में लागू संविधानों में किसी देशी रियासत के भारत अथवा पाकिस्तान की 'डोमिनियन' में मिलने की शर्त बस यही थी कि अपने हस्ताक्षर से युक्त विलय-पत्र के साथ, ऐसे विलय का प्रस्ताव उस देशी रियासत के शासक द्वारा उस डोमिनियन के पास किया गया हो, जिसमें वह अपनी रियासत का विलय चाहता है। संबंधित डोमिनियन के गवर्नर जनरल द्वारा विलय-पत्र को स्वीकार करने से संबंधित सभी सांविधानिक शर्तें पूरी हो जाती हैं।"

महाराजा का अधिकार

पूर्व-पृष्ठों में बताया जा चुका है कि कश्मीर में पाकिस्तान का आक्रमण प्रारंभ होने से पहले पाकिस्तान के गवर्नर जनरल मोहम्मद अली जिन्ना का व्यक्तिगत पत्र लेकर उनका सैनिक सचिव तीन बार महाराजा से मिलने श्रीनगर आया था। उन पत्रों व वार्ता का सार यही था कि "महाराजा हरिसिंह एक स्वतंत्र और संप्रभु राजा हैं और अकेले उनको ही अपने राज्य के विलय के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त है। इस संबंध में महाराजा को नेशनल कान्फ्रेन्स और उसके नेता शेख अब्दुल्ला से भी सलाह लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।" उस समय जिन्ना की ओर से महाराजा हरिसिंह को यह भी कहा गया था कि "उन्हें अपने अधिकारों का हस्तान्तरण राज्य के पक्ष में भी करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे अपने राज्य के अधिकार-सम्पन्न राजा बने रह सकते हैं और पाकिस्तान में अपने राज्य का विलय करने पर पाकिस्तान उन्हें इस बात का पूरा भरोसा दिलाता है कि वह उनके सिर के एक बाल तक को नहीं छुएगा और न ही उनकी सत्ता एवं शक्ति में किसी प्रकार की कोई कमी की जायेगी।"

पाकिस्तानी गवर्नर जनरल द्वारा की गयी महाराजा के अधिकारों की उपर्युक्त व्याख्या भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अनुसार सर्वथा विधिसम्मत है। उसको जिन्ना स्वीकार करते या न करते, महाराजा के वे अधिकार अपने में परिपूर्ण और सर्वथा अनुल्लंघनीय माने जायेंगे। पाकिस्तान क्या, विश्व का कोई भी देश—फिर चाहे वह भारत ही क्यों न हो—महाराजा के उस अधिकार को सशर्त नहीं बना सकता और न ही उसका उल्लंघन कर सकता है।

जनमत-संग्रह का प्रस्ताव विधि-विरुद्ध

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ ने भारत और पाकिस्तान के गवर्नर जनरलों को किसी भी भारतीय रियासत के शासक द्वारा हस्ताक्षरित विलय-पत्र को स्वीकार करने या न करने की ही शक्ति दे रखी थी, लेकिन उन्हें विलय की प्रक्रिया को लटकाये रखने या उसके विषय में शर्तें लगाने का कोई अधिकार नहीं दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत महाराजा द्वारा किये गये विलय संबंधी निर्णय को जनमत-संग्रह होने तक लटकाये रखने का अथवा उस संबंध में पाकिस्तान या किसी से भी समझौता करने का अधिकार भारत सरकार को न था, न है। भारत सरकार ने वैसा करके भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम का उल्लंघन किया है। भारतीय संविधान-सभा द्वारा बनाया गया तथा २६ जनवरी १९५० से लागू हुआ भारतीय संघ का नया संविधान भी भारत सरकार को जम्मू-कश्मीर राज्य के विलय पर पुनर्विचार करने या उसके संबंध में किसी अन्य देश अथवा अंतरराष्ट्रीय संगठन से समझौता करने का कोई अधिकार नहीं देता है।

अपने संविधान और अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार भारत एक अविभाज्य इकाई है। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से बनाये गये उसके सभी प्रदेश उसके अविभाज्य अंग हैं। उनमें से कोई भी प्रदेश न तो भारत से अलग होने की मांग कर सकता है और न ही उसे अलग किया जा सकता है। इसी प्रकार कोई पूर्ववर्ती देशी रियासत अपने विलय संबंधी मामले पर पुनर्विचार करने की मांग नहीं कर सकती। भारतीय गणराज्य भी उसको या उसके किसी भाग को पृथक् इकाई मानकर अलग करने के लिए अपनी ओर से कोई पहल या कार्यवाही नहीं कर सकता। भारतीय संविधान की प्रस्तावना के शब्द "हम, भारत के लोग ....." यही दर्शाते हैं कि हमने पूरे भारत को और यहाँ के राष्ट्रीय जन को अविभाज्य इकाई माना है, न कि अलग-अलग क्षेत्रों या जन-समूहों का योग, अन्यथा संविधान की प्रस्तावना में 'हम, भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों के रहने वाले लोग.....' शब्दों का प्रयोग

किया गया होता। ऐसी स्थिति में न तो भारत संघ को, न उसके किसी राज्य को और न ही किसी क्षेत्र के नागरिकों को भारत की अखंडता को खंडित करने का अधिकार है। जनमत-संग्रह जैसे उपक्रमों का भारतीय संविधान में कोई प्रावधान नहीं है। भारत के प्रतिनिधि को सुरक्षा परिषद् में जनमत-संग्रह द्वारा जम्मू-कश्मीर के भाग्य का फैसला करने का अभिवचन देने का कोई सांविधानिक या अन्य किसी प्रकार का अधिकार नहीं था।

सुरक्षा परिषद् की अनधिकार चेष्टा

वास्तविकता यह है कि सुरक्षा परिषद् को भी इस संबंध में विचार करने का कोई अधिकार नहीं था। भारत के किसी भी भूभाग को भारत से सम्बद्ध या असम्बद्ध होने का अधिकार देना उसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर है। इसलिए सुरक्षा परिषद् द्वारा जम्मू-कश्मीर में जनमत-संग्रह कराने के लिए अगस्त १९४८ में पारित किया गया प्रस्ताव विधिसम्मत नहीं माना जा सकता।

सुरक्षा परिषद् या संयुक्त राष्ट्र संघ को जम्मू-कश्मीर के विलय की वैधता की जाँच कराने का, उसको स्वीकार या अस्वीकार करने का, या उसकी पुष्टि हेतु किसी प्रक्रिया को चलाने का कोई अधिकार नहीं था और न है। भारत की शिकायत के संदर्भ में उस पर एक ही जिम्मेदारी थी कि डिक्सन व जारिंग आयोगों की संस्तुति के अनुसार वह पाकिस्तान को आक्रान्ता घोषित कर उसको जम्मू-कश्मीर से अपनी सेनाओं को हटाने के लिए बाध्य करे, जो उसने नहीं किया। इसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा कार्य उसके अधिकार-क्षेत्र में न था, और न है।

पाकिस्तानी प्रलाप निष्प्रभाव हुआ

यही कारण है कि १९६५ के बाद आज तक लगभग २५ वर्ष का लम्बा काल बीत जाने के बाद भी सुरक्षा परिषद् ने कश्मीर मामले पर कभी विचार नहीं किया है और पाकिस्तान द्वारा जनमत-संग्रह की रट को संसार के लगभग सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों ने ठुकरा दिया है तथा पाकिस्तान को भारत से सीधे वार्ता करने की सलाह दी है। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव जेवियर पेरेज डी कुइयार ने भी ऐसी ही प्रतिक्रिया व्यक्त की है। सोवियत संघ ने सम्पूर्ण मामले को समझते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "जम्मू-कश्मीर भारत का अपना आंतरिक मामला है और उसमें पाकिस्तान किसी प्रकार से पक्ष नहीं बनता।" भारतीय स्वाधीनता अधिनियम की

कोख से जन्मा पाकिस्तान अब उसी आधारभूत कानून के अन्तर्गत बनी विलय-प्रक्रिया को कैसे अमान्य कर सकता है और जम्मू-कश्मीर राज्य के विधिसम्मत विलय को कैसे चुनौती दे सकता है तथा उसको पलटने के उद्देश्य से जनमत-संग्रह की माँग कैसे कर सकता है ?

विधिसम्मत वस्तुस्थिति

फिर भी कुछ लोग भारत की वचनबद्धता का तर्क देकर जनमतसंग्रह का प्रसंग आये दिन उठाते रहते हैं। लेकिन ऐसा तर्क देने वाले लोग मामले के सभी पहलुओं एवं बारीकियों से संभवतः अनभिज्ञ हों। इस संबंध में जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री और बाद में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रह चुके श्री मेहरचन्द महाजन द्वारा दिया गया विवरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जो दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'पाञ्चजन्य' साप्ताहिक के १ अप्रैल १९९० के 'शिखर और शोले' विशेषांक में एक लेख के रूप में प्रकाशित हुआ है। अपने उस विवरण में महाजन ने स्पष्ट किया है कि २६ अक्टूबर १९४७ को जम्मू-कश्मीर राज्य का भारत में विलय होने के बाद जब भारतीय सेनाएं जम्मू-कश्मीर से, अर्थात् अपने देश के एक भूभाग से, आक्रान्ता पाकिस्तानी सैनिकों को खदेड़ने लगीं, तब उसी दौरान लार्ड माउण्टबेटन ने भारत और पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों की एक बैठक नयी दिल्ली में बुलाकर समस्या को निपटाना चाहा। इस बैठक में पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली खान जम्मू-कश्मीर राज्य में जनमतसंग्रह कराने पर बहुत बल दे रहे थे, जबकि वे (महाजन) इसका विरोध इस आधार पर कर रहे थे कि भारतीय स्वाधीनता अधिनियम १९४७ में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त और असम के सिलहट क्षेत्र में जनमतसंग्रह कराने का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था, जबकि देशी रियासतों के संबंध में ऐसी कोई शर्त नहीं लगायी गयी थी। उनका भारत या पाकिस्तान में विलय करने की शक्ति पूरी तरह से उन रियासतों के शासकों को ही सौंपी गयी थी। उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त और सिलहट के संबंध में स्पष्ट व्याख्या करने से यह भी साफ था कि भारतीय स्वाधीनता अधिनियम १९४७ को पारित करते समय ब्रिटेन की संसद् और उसके बाद उसे स्वीकार करके भारत और पाकिस्तान का शासन संभालने वाले कांग्रेस और मुस्लिम लीग के सभी नेता इस बात को पूरी तरह जानते थे कि रियासतों का भारत और पाकिस्तान की डोमिनियनों में विलय उनके शासकों के निर्णय के अनुसार होगा, और उसे किसी शर्त से बाँधा

नहीं जायेगा। पाकिस्तान के गवर्नर जनरल और उसके जन्मदाता मोहम्मद अली जिन्ना तो अत्यन्त प्रसिद्ध बैरिस्टर होने के कारण कानूनी तथा सांविधानिक मामलों की बारीकियों को अच्छी तरह समझते थे। अतः श्री महाजन का कहना है कि वे उस वार्ता के आरंभ में जनमतसंग्रह (Plebiscite) के प्रस्ताव को स्वीकार करने के पूरी तरह विरुद्ध थे, लेकिन जब लियाकत अली खान उस वार्ता में उसके लिए जिद ही करने लगे तब एक शब्दकोष मँगाकर पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को यह भी बता दिया गया कि जनमतसंग्रह का अर्थ सामान्य जन के मतों की गणना करना (रेफरेण्डम) ही नहीं होता। यदि जनता के चुने हुए प्रतिनिधि किसी प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा देते हैं तब वह भी जनमतसंग्रह (प्लेबीसाइट) ही कहलायेगा। २७ अक्टूबर १९५० को वयस्क मताधिकार के आधार पर जम्मू-कश्मीर की संविधान-सभा का चुनाव नेशनल कान्फ्रेंस ने लड़ा था। उसने जम्मू-कश्मीर के भारत में विलय की पुष्टि को अपना मुख्य चुनावी मुद्दा बनाया था और उसमें उसे भारी तथा निर्णायक सफलता प्राप्त हुई थी। राज्य की संविधान-सभा ने जम्मू-कश्मीर का संविधान १७ नवम्बर १९५६ को स्वीकार किया और उसे २६ जनवरी १९५७ से राज्य पर लागू किया। उसी के साथ जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में विलय की अंतिम रूप से पुष्टि भी की गयी। जम्मू-कश्मीर राज्य के संविधान की धारा ३ में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि "जम्मू-कश्मीर राज्य भारतीय संघ का एक अविभाज्य अंग है और सदैव उसका अविभाज्य अंग रहेगा।" धारा ३ और ५ में विलय को अन्तिम घोषित करते हुए यह संकल्प भी व्यक्त किया गया है कि इस प्रश्न को अब भविष्य में कभी नहीं उठाया जा सकेगा। राज्य के वयस्क मतदाताओं के द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधियों ने न जाने कितनी बार जम्मू-कश्मीर राज्य को भारत का अविभाज्य अंग घोषित करते हुए उसके भारत में विलय की ही पुष्टि की है। क्या इस प्रकार भारत द्वारा जनमतसंग्रह की शर्त को भी अनगिनत बार पूरा नहीं किया जा चुका है? फिर पाकिस्तान द्वारा उसकी रट लगाते रहने का क्या औचित्य रह जाता है? इसलिए अन्तरराष्ट्रीय विधि के प्रसिद्ध विदेशी विद्वान पॉटर का तो यहाँ तक कहना है कि "जनमतसंग्रह द्वारा विलय की पुष्टि की जानी थी, परीक्षण नहीं।" और यह पुष्टि अनेकों बार की जा चुकी है। इसी प्रकार की टिप्पणी करते हुए एवेण्ड्रोथ नामक एक अन्य प्रमुख विदेशी विद्वान ने लिखा है कि "२६ अक्टूबर १९४७ को महाराजा हरिसिंह द्वारा किया गया विलय पूरी तरह से वैधानिक, अन्तिम और

बाध्यकारी है, क्योंकि भारतीय स्वाधीनता अधिनियम ने भारत अथवा पाकिस्तान में विलय करने की शक्ति देशी रियासतों के शासकों को ही सौंपी थी।" इन सभी कथनों और वक्तव्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि जम्मू-कश्मीर राज्य का भारत में विलय पूर्ण, अन्तिम, दोषरहित, अटल है तथा अब निरीक्षण-परीक्षण के लिए खुला नहीं है।

पाकिस्तान ने ही दायित्व पूरा नहीं किया

इसके अतिरिक्त पाकिस्तान द्वारा जनमतसंग्रह कराने की मांग का वैसे भी कोई आधार नहीं है। इसका कारण यह है कि अन्तरराष्ट्रीय समझौतों में दायित्व उस समझौते में शामिल सभी पक्षों का होता है और उसमें समय की मर्यादा का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण होता है। आखिर जम्मू-कश्मीर के निवासियों का भाग्य अनिश्चित समय तक लटका कर नहीं रखा जा सकता। यदि एक क्षण के लिए पाकिस्तान का जनमतसंग्रह का दावा स्वीकार भी कर लिया जाय, तब प्रश्न यह उठता है कि सुरक्षा परिषद् के १३ अगस्त १९४८ के प्रस्ताव के अनुसार जनमतसंग्रह से पहले पाकिस्तान को जम्मू-कश्मीर क्षेत्र से अपने सभी सैनिकों को वापस बुलाने की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी और पाकिस्तान ने उसे पूरी तरह स्पष्ट शब्दों में स्वीकार भी किया था। उसके बाद ५ जनवरी १९४९ को सुरक्षा परिषद् द्वारा स्वीकार किये गये प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि जब पाकिस्तान सुरक्षा परिषद् के १३ अगस्त १९४८ के प्रस्ताव के आधार पर अपने सभी सैनिक जम्मू-कश्मीर से हटाकर उसे मुक्त कर देगा, तभी संयुक्त राष्ट्रसंघीय आयोग जनमतसंग्रह-प्रशासक के लिए अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में विख्यात एवं निष्पक्ष व्यक्ति के नाम की सिफारिश करेगा और इस जनमतसंग्रह-प्रशासक की नियुक्ति जम्मू-कश्मीर सरकार द्वारा की जायेगी। किन्तु पाकिस्तान ने न तो अपने सैनिकों को जम्मू-कश्मीर क्षेत्र से पूरी तरह हटाया है और न ही युद्ध-समाप्ति की विधिवत् घोषणा की है। इसके विपरीत उसने राज्य के २/५ भाग पर बलात् कब्जा बनाये रखा है, जो सर्वथा अवैधानिक है और अन्तरराष्ट्रीय परम्पराओं के भी विरुद्ध है। अन्तरराष्ट्रीय विधान आक्रमणकारी को अपने अवैध आक्रमण से लाभान्वित होने की अनुमति नहीं देता और न ही उसको इस समस्या में पक्ष मानता है। उसके अनुसार पाक सेनाओं को राज्य के २/५ भाग से हट जाना चाहिए था और रियासत के मामले में पक्ष बनकर सामने नहीं आना चाहिए। उसको राज्य में जनमतसंग्रह कराने की मांग करने का भी अधिकार नहीं है, उसकी कार्यविधि आदि पर चर्चा करने की बात तो अलग रही। जनमतसंग्रह

हो या न हो, हो तो उसकी विधि क्या हो, वह सुरक्षा परिषद् के तत्त्वावधान में हो या अन्य किसी प्रकार से हो, आदि विषय उठाने का पाकिस्तान को कोई अधिकार ही नहीं है। उस विषय में परोक्ष या प्रत्यक्ष में दबाव डालने की पाकिस्तानी चेष्टा अनुचित है, विधि व परम्परा के विरुद्ध है तथा क्षेत्र की शान्ति-व्यवस्था के लिए संकट है।

पाकिस्तान का राज्य में अवैध कब्जा उसकी शान्तिप्रियता का नहीं, उसकी लूटपाट की प्रवृत्ति का प्रमाण है। उसकी जनमतसंग्रह का मांग भी उसके शान्तिप्रिय होने का लक्षण नहीं, वरन् उसकी कपटी कूटनीति का द्योतक है। वह अमरीकी नियंत्रण वाले सैनिक गठबंधन का सदस्य है और उसके साथ जुड़े शीत-युद्ध तथा सामरिक व्यूह-रचना में भी भागीदार है। इराक-कुवैत प्रकरण में उसके द्वारा सेना भेजा जाना नवीनतम प्रमाण है। उसका लक्ष्य है उस संगठन के दबाव से जम्मू-कश्मीर पर चले आ रहे अपने अवैध कब्जे को वैध बनाना और उसको अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्य कराना।

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा नियुक्त स्वीडन के गुन्नार जारिंग नामक मध्यस्थ ने अपने प्रतिवेदन में इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए साफ शब्दों में १९५७ में लिखा था:

"इस समय तक समस्या (जम्मू-कश्मीर) के सभी पहलुओं का विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण करते समय मैं कश्मीर से संबंधित राजनीतिक, आर्थिक और सामरिक परिस्थितियों में आये हुए परिवर्तनों तथा पश्चिमी एवं दक्षिणी एशिया के क्षेत्रों में परिवर्तित शक्ति-संतुलन की तनिक भी उपेक्षा नहीं कर सकता।"

'भारत को लम्बे समय तक बाँधकर नहीं रखा जा सकता'

अपने इसी प्रतिवेदन को सुरक्षा परिषद् के सामने रखते हुए डॉ. गुन्नार जारिंग ने आगे कहा था कि भारत को उसके जनमतसंग्रह के आश्वासन से लम्बे समय तक बाँध कर रखा नहीं जा सकता, क्योंकि पाकिस्तान ने १३ अगस्त १९४८ के संयुक्त राष्ट्र-संघीय प्रस्ताव को अभी तक लागू नहीं किया है, अर्थात् उसने अपनी सेनाएं जम्मू-कश्मीर से वापस बुलाकर अपना आक्रमण समाप्त नहीं किया है। १९६५ और १९७१ के भारत-पाक युद्धों द्वारा भी उसने इसी सच्चाई की पुष्टि की थी कि वह अमेरिका से प्राप्त आधुनिकतम शस्त्रास्त्रों के भरोसे जम्मू-कश्मीर राज्य को हथिया लेना चाहता था। यह बात दूसरी है कि अपनी इन कुत्सित योजनाओं में उसे सफलता नहीं मिल सकी और दोनों बार उसे युद्ध में भारी पराजय उठानी पड़ी। यहाँ तक

कि १९७१ के युद्ध में तो उसका पूर्वी भाग (पूर्वी बंगाल) उससे पूरी तरह अलग होकर एक स्वाधीन, सार्वभौम एवं संप्रभु बंगला देश के नाम से राष्ट्रों के समुदाय में आ बैठा। इसके साथ ही उसके ९३,००० सैनिक भारत द्वारा युद्धबंदी बना लिये गये। उन्हें मुक्त कराने के लिए १९७२ में तत्कालीन पाकिस्तानी प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने भारत की यात्रा की और भारतीय प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी से शिमला समझौता करते हुए इस बात का अभिवचन भी दिया कि भविष्य में भारत तथा पाकिस्तान के बीच उठने वाले सभी विवादों और अभी तक चली आ रही समस्याओं के बारे में दोनों देश सीधी वार्ता किया करेंगे। दोनों नेताओं ने स्पष्ट शब्दों में यह भी संकल्प किया था कि कश्मीर संबंधी मामला भी शिमला समझौते के ही दायरे में आता है। लेकिन पिछले १८ वर्षों से पाकिस्तान ने कश्मीर मामले को सुलझाने के लिए कोई सकारात्मक पग नहीं उठाया है। तब आज वह किस मुँह से जनमतसंग्रह की रट लगा रहा है ? संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उसके तत्त्वावधान में जनमतसंग्रह को बीच में डालना शिमला समझौते का उल्लंघन है।

वैकल्पिक उपायों से आश्वासन पूरा किया

पाकिस्तान को यदि जम्मू-कश्मीर के निवासियों के हितों की तनिक भी चिन्ता होती तो वह मामले को इस प्रकार १९४७ से अब तक लटकाये नहीं रखता ! इसके विपरीत भारत को अपने अविभाज्य अंग जम्मू-कश्मीर के निवासियों के हितों, विकास एवं प्रगति की पूरी चिन्ता थी। इसलिए वैकल्पिक उपायों द्वारा उसने जनमतसंग्रह की उस शर्त को भी बहुत पहले पूरा कर दिया है। अतः अब पाकिस्तान का जम्मू-कश्मीर में कोई कानूनी या सांविधानिक हक नहीं बनता और संयुक्त राष्ट्रसंघ इस विषय में उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता। कारण यह है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् पाकिस्तान को जम्मू-कश्मीर में प्रकारान्तर से आक्रमणकारी मान चुकी है। इसके अतिरिक्त भारत सुरक्षा परिषद् में जम्मू-कश्मीर के भारत में विलय की वैधता की जाँच कराने के लिए नहीं, वरन् अपने ही अंग जम्मू-कश्मीर पर से पाकिस्तान का आक्रमण समाप्त कराने के लिए गया था। संयुक्त राष्ट्रसंघ अपनी इस आधारभूत जिम्मेदारी को पूरा करने में पूरी तरह से विफल रहा है, अतः जम्मू-कश्मीर संबंधी मामला वहाँ से वापस लेने के अतिरिक्त अब भारत के सम्मुख और कोई विकल्प शेष नहीं रह गया है।

आत्मनिर्णय की रट का खोखलापन

जनमतसंग्रह संबंधी भ्रान्तियों की तरह ही पाकिस्तान संसार में यह भ्रम भी फैलाने का एक सुनियोजित प्रयास करता रहा है कि भारत ने विलय संबंधी मामले पर जनमतसंग्रह न कराकर जम्मू-कश्मीर के निवासियों को आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित कर रखा है। इस संबंध में वह आये दिन संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद १ (२) और अनुच्छेद ५५ का हवाला देता रहा है।

इस पाकिस्तानी चेष्टा पर टिप्पणी करने से पूर्व हमें आत्मनिर्णय के सिद्धान्त, उसके प्रभाव और इतिहास को समझ लेना चाहिए। उल्लेखनीय है कि आत्मनिर्णय के अधिकार की चर्चा अमरीकी राष्ट्रपति विल्सन के उस संदेश से उभरी जो उन्होंने ११ फरवरी १९१८ को अमरीकी कांग्रेस को भेजा था। इस सिद्धान्त के अनुसार अलग-अलग राष्ट्रीयता के लोगों के अलग-अलग राज्य स्थापित होने थे। किन्तु विल्सन की इस घोषणा के बाद भी राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के अधिकार का सिद्धान्त न तो अभी तक अंतरराष्ट्रीय कानून बन सका और न ही राज्य-रचना का मान्य आधार। उसी का परिणाम है कि संसार के राष्ट्रों व राज्यों के आधार एक जैसे नहीं हैं। आज संसार में सोवियत संघ जैसे अनेक बहुराष्ट्रीय राज्य हैं तो कोरिया या अरब जैसे अनेक बहुराज्यीय राष्ट्र भी हैं। पश्चिमी एशिया में अनेक अरब राज्यों का अस्तित्व इसी तथ्य का प्रमाण है। इन उदाहरणों का तात्पर्य है कि 'एक राष्ट्र—एक राज्य' का सिद्धान्त, जिसका पाकिस्तान अपनी विस्तारवादी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए आये दिन शोर मचाता है, मान्यता प्राप्त नहीं कर सका है। संसार में जो राष्ट्र-राज्य की संरचनाएँ विद्यमान हैं, वे उससे मेल नहीं खाती हैं।

आत्मनिर्णय का अभिप्राय

आत्मनिर्णय के समर्थन में पाकिस्तान राष्ट्रसंघ के चार्टर के अनुच्छेद १(२) और ५५ का उल्लेख करता है। किन्तु उन अनुच्छेदों का उसने जो अर्थ समझा है, वह यथार्थ नहीं है। आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का आशय यह है कि भिन्न-भिन्न स्वतंत्र राष्ट्रों के नागरिकों के बीच बराबरी और भाईचारे की भावनाओं की स्थापना हो; एक स्वतंत्र राष्ट्र दूसरे स्वतंत्र राष्ट्र को गुलाम बनाने का प्रयास न करे। २४ अक्टूबर १९४५ को जब संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई तब संसार का एक बड़ा भाग साम्राज्यवादी शक्तियों का शिकार बना हुआ था। उसके निवासियों को साम्राज्यवादी

शिकंजे से मुक्ति दिलाना इन प्रावधानों का उद्देश्य था। इसका यह हेतु नहीं था कि किसी स्वतंत्र राष्ट्र के किसी एक भाग को आत्मनिर्णय के नाम पर पृथक् होने का अधिकार दे दिया जाये। यदि ऐसा किया जाता तो विश्व के अनेक देशों में विघटनकारी शक्तियाँ इतनी प्रबल हो उठतीं कि उनकी अपनी राष्ट्रीय एकता और अखंडता खतरे में पड़ जाती।

मजहब की दुहाई का खोखलापन

मजहब का प्रश्न खड़ा करके कश्मीरियों को आत्मनिर्णय का अधिकार देने के पाकिस्तानी दावे का विवेचन तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के प्रकाश में करना उचित रहेगा। ब्रिटिश संसद् ने भारतीय स्वाधीनता अधिनियम १९४७ को द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त के आधार पर पारित किया और उसको ब्रिटिश भारत पर लागू किया। देशी रियासतों को उस अधिनियम के प्रभाव-क्षेत्र से अलग रखा। क्या उसका कारण यह नहीं था कि अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए ब्रिटिश कूटनीति ने भारत-विभाजन का घिनौना कुचक्र मुस्लिम लीग के माध्यम से भले ही चलाया हो, लेकिन उन्हें इस सच्चाई का पूरा ज्ञान था कि भारत का यह विभाजन देश की प्रकृति से बेमेल है, कृत्रिम है, मात्र उनकी राजनीति की पूर्ति हेतु है, देशवासियों की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार क्या यह सच नहीं है कि स्वयं पाकिस्तान के निर्माता मोहम्मद अली जिन्ना को मजहब के आधार पर देश को बाँटने की अपनी गंभीर गलती का अनुभव इतिहास के उन दुर्भाग्यपूर्ण दिनों में ही हो गया था जब पाकिस्तान का जन्म हो रहा था और देश के करोड़ों नागरिक, हिन्दू और मुसलमान दोनों ही, विभाजन की मर्माहत पीड़ा से आहत हुए दर-दर भटक रहे थे और अमानुषिक अत्याचार के शिकार हो रहे थे? मजहब के आधार पर राष्ट्र-राज्य का निर्माण या विभाजन की बाँग देने वालों को, फिर चाहे वे पाकिस्तानी हों या अन्य कोई, भूलना नहीं चाहिए कि यदि मजहब का आधार पृथक् राष्ट्र-निर्माण के लिए या उसको टिकाने के लिए पर्याप्त सशक्त होता, तो समान मजहबी आधार होते हुए भी पूर्वी बंगाल का प्रान्त पाकिस्तान से अलग क्यों होता और विश्व के मानचित्र पर बंगला देश नाम से एक पृथक् व स्वतंत्र राष्ट्र-राज्य के रूप में क्यों उभरता? मजहब की दुहाई देने वाला पाकिस्तान उसको अपने साथ जोड़कर नहीं रख सका, तो वह किस मुँह से उसी मजहबी आधार पर कश्मीर को मिलाने की बात उठा रहा है? मजहबी आधार पर किया गया विलय या एकीकरण या मित्रता या भाईचारापन भी कितना सार्थक होता है, इसका पता पाकिस्तान में उभर रहे 'जीये सिंध' आन्दोलन से,

अफगानिस्तान की आन्तरिक स्थिति से, या पाक और अफगानिस्तान के तथा ईरान व इराक के टकराव से लगता है। मजहबी नारा क्षणिक राजनीतिक आवश्यकता की पूर्ति भले ही कर दे, किन्तु उस क्षेत्र के निवासियों को सुख-शान्ति भी दे सके, ऐसा अनुभव नहीं है। और फिर पाकिस्तान को मजहबी आधार से कितना लगाव है, इसका अनुमान इस बात से हो जाता है कि बंगला देश के पृथक् होने के पश्चात् वहाँ रहने वाले बिहारी मुसलमानों को जब बंगला देश छोड़ना पड़ा, तो उन्होंने पाकिस्तान जाने की इच्छा प्रकट की, किंतु पाकिस्तान ने उनको स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। तब कहाँ गया था उसका मजहबी भाईचारा या राष्ट्रवाद ? ऐसा पाकिस्तान जब मजहब के आधार पर और आत्मनिर्णय के अधिकार की बाँग लगाता है, तो वह उसका राजनीतिक ढोंग मात्र है, कश्मीर के नन्दन वन को हथियाने की हविश मात्र है।

पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त और सिन्ध के निवासियों में आत्मनिर्णय की आवाज़ जोर पकड़ रही है। क्या पाकिस्तान उस आवाज को सुनेगा? सिंध में चल रहे 'जीये सिंध' आन्दोलन के जनक जी. एम. सैयद का यह कथन कि किसी भी देश के निवासियों को जोड़ने वाली शक्ति उनका मजहब नहीं, उनकी सांझी संस्कृति होती है, पाकिस्तान की आधार-शिला—मजहबी राष्ट्रवाद—को धराशायी कर देती है।

कश्मीरी मुसलमानों में भी अनेक समझदार लोग हैं। वे अवश्य ही उपर्युक्त घटनाओं पर विचार करते होंगे। उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से सन् १९४७ में देखा है कि पाकिस्तानी हमलावरों ने, जो मुसलमान ही थे, कश्मीरी बहू-बेटियों के प्रति कैसा बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया था। उनको इसका ध्यान नहीं था कि जिनका शील भंग किया गया या अपहरण किया गया या जिनको लूटा-मारा गया, वे भी मुसलमान थे। इन घटनाओं का यही फलित है कि समान मजहब न सदाचरण की गारंटी है और न ही टिकाऊ राष्ट्रवाद व भाईचारे की।

मजहब के आधार पर आत्म-निर्णय का अधिकार न व्यावहारिक है, न कल्याणकारी और न ही वैधानिक। वह राजनीतिक दाँवपेंच का एक पैंतरा मात्र है, जिसका प्रयोग देश के लिए घातक सिद्ध होता है, क्योंकि वह विभाजनकारी है। सोवियत संघ के बाल्टिक राष्ट्र-राज्यों की पृथकता की मांग का उदाहरण कश्मीर से मेल नहीं खाता, क्योंकि उन राज्यों की मांग का आधार मजहब नहीं वरन् उनकी प्राचीन स्वतंत्र राष्ट्रीयता है।

अवांछनीय नेतृत्व : शेख अब्दुल्ला

कश्मीर की वर्तमान चिन्ताजनक स्थिति, जब पूरी घाटी में अत्यन्त आपत्तिजनक भारत-विरोधी और पाकिस्तान-समर्थक ("भारतीय कुत्तो, वाहर जाओ", "हिन्दुस्तान मुर्दाबाद", "पाकिस्तान जिन्दाबाद" या "आजादी-आजादी") नारे लग रहे हैं, भारत के प्रति निष्ठा रखने वालों को चुन-चुन कर मारा जा रहा है और हिन्दू समाज से घाटी खाली करवा ली गयी है, एकाएक निर्मित नहीं हुई है। इस विष-वृक्ष को, जिसने न केवल जम्मू-कश्मीर राज्य को, अपितु पूरे भारत को संत्रस्त कर दिया है, राज्य के पहले मुख्यमंत्री शेख अब्दुल्ला ने लगाया था। उनकी दोमुँही नीतियों और उद्घोषणओं ने देश के नेतृत्व को धोखे में रखा। उनके वास्तविक मंसूबों और मौसमी भाषणों में जमीन-आसमान का अन्तर रहता था। दिल्ली में दिये गये उनके भाषण उनका मुखौटा थे; उनकी आन्तरिक भावनाओं का पता तो उनके उन उद्गारों से लगता है जो वह घाटी और जम्मू क्षेत्र की मस्जिदों में व्यक्त करते थे। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि देशवासी और विशेषकर राजनेता व प्रबुद्ध वर्ग बहुत बाद तक उनके इरादों को समझ नहीं सके।

शेख अब्दुल्ला की संदिग्ध राष्ट्रनिष्ठा

शेख अब्दुल्ला को समझने के लिए उनके पुराने इतिहास में झाँकना होगा। पाकिस्तान आन्दोलन के गढ़ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यलिय से अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् शेख अब्दुल्ला की जम्मू-कश्मीर राज्य के एक विद्यालय में विज्ञान शिक्षक के रूप में नियुक्ति हुई थी। परन्तु उसके एक घोर अनैतिक आचरण के कारण उसे सरकारी सेवा से निकाल दिया गया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की देन के रूप में उसके अन्दर फिरकापरस्ती के विष-बीज तो पहले से ही पड़े हुए थे, इस घटना ने आग में पेट्रोल डालने जैसा काम किया। उसके मन में महाराजा के विरुद्ध द्वेषाग्नि भड़क उठी और मस्तिष्क मजहबी उन्माद भड़काने की युक्तियाँ

सोचने लगा। ब्रिटिश कूटनीति को एक ऐसे ही व्यक्ति की जम्मू-कश्मीर में आवश्यकता थी। अंग्रेज महाराजा हरिसिंह से उस समय से रुष्ट थे, जब लन्दन में हुए गोलमेज सम्मेलन में महाराजा ने भारत की स्वाधीनता के लिए आवाज उठायी थी और महात्मा गांधी का समर्थन किया था। वे महाराजा को सबक सिखाने का अवसर ढूँढ ही रहे थे कि उन्हें शेख अब्दुल्ला जैसा एक उपयुक्त हस्तक मिल गया। और सन् १९३२ के आसपास से शेख अब्दुल्ला ब्रिटिश एजेण्ट की भूमिका निभाने लगा। पढ़े-लिखे मुस्लिम युवकों को अपना अनुयायी बनाने में उसे सफलता मिली। उसने उनको धीरे-धीरे राज्य के उच्च पदों पर पहुँचाया और प्रशासन पर अपना पंजा जमाया। उसके द्वारा राज्य-प्रशासन में फैलायी गयी साम्प्रदायिकता का एक नमूना उल्लेखनीय है। जम्मू-कश्मीर में गोवध कानूनी अपराध माना जाता था। ऐसा अपराध करने वाले को कम से कम सात वर्ष की सजा का विधान था। सन् १९३० की बात है कि ऐसा अपराध करने वाले एक वधिक को हाईकोर्ट के एक जज अब्दुल कयूम ने केवल ६ महीने की सजा दी और इतनी कम सजा देने का कारण बताते हुए लिखा कि इस घटना से हिन्दुओं की भावना को ठेस नहीं पहुँची है क्योंकि अपराध रात के अंधेरे में हुआ था। हिन्दू समाज में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। हिन्दू-सिख नौजवान सभा के नेतृत्व में गोरक्षा आन्दोलन चला। जम्मू नगर में ३५ दिनों की हड़ताल हुई। लोगों ने धरना दिया, गिरफ्तारियाँ दीं। अन्त में पं. मदनमोहन मालवीय के सुपुत्र कृष्णकान्त मालवीय के बीच में पड़ने पर आन्दोलन को बन्द किया गया।

ब्रिटिश एजेण्ट

सेक्युलरिज्म के नाम पर मुस्लिम तुष्टीकरण के समर्थक 'ब्लिट्ज' साप्ताहिक ने अपने २४ अप्रैल १९६५ के अंक में 'शेख अब्दुल्ला एक ब्रिटिश एजेंट या मुखबिर?' शीर्षक से मुखपृष्ठ पर से ही प्रारम्भ करके एक लम्बा लेख प्रकाशित किया था। उसमें अंग्रेज सरकार की गुप्तचर सेवा के प्रमुख बी. जे. ग्लैन्सी, श्रीनगर स्थित ब्रिटिश रेजीडेंट लेफ्टीनेण्ट कर्नल ली. ई. लांग, और जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमन्त्री कर्नल सी. डब्ल्यू. काल्विन के साथ १९३५-३६ में हुए शेख अब्दुल्ला के पत्र-व्यवहार का विस्तृत विवरण दिया गया था। ब्रिटिश निर्देश पर ही शेख अब्दुल्ला ने जम्मू-कश्मीर राज्य के एक वरिष्ठ देशभक्त अधिकारी हरिकिशन लाल के विरुद्ध आन्दोलन चलाकर उन्हें हटाने में सफलता प्राप्त की थी। लेफ्टीनेण्ट कर्नल

भवानी सिंह लिखित 'कश्मीर में राजनीतिक षड्यंत्र', डा. होरीलाल सक्सेना लिखित 'कश्मीर की त्रासदी', भूतपूर्व केन्द्रीय खाद्य मन्त्री एवं स्व. रफी अहमद किदवई के विश्वासपात्र एवं सहयोगी अजित प्रसाद जैन द्वारा लिखित कश्मीर संबंधी पुस्तक और भारत के गुप्तचर सेवा के भूतपूर्व प्रमुख बी. एन. मलिक द्वारा लिखित 'नेहरू के साथ मेरे वर्ष' नामक पुस्तकों में भी शेख अब्दुल्ला के राष्ट्रघाती आचरण एवं साम्प्रदायिकतावादी रवैये का विस्तृत विवरण मिलता है। होरी लाल सक्सेना ने उन्हें अपनी पुस्तक में ब्रिटिश एजेण्ट बताया है। प्रो. बलराज मधोक की 'कश्मीर, जम्मू और लद्दाख : समस्या और समाधान' नामक पुस्तक भी हमें यह कहानी बताती है। श्री मलिक अपनी पुस्तक के पृष्ठ २८-२९ पर लिखते हैं कि जब उन्होंने श्री नेहरू को यह बताया कि शेख ने अपनी पार्टी का नाम भले ही 'नेशनल कान्फ्रेन्स' कर दिया है, किन्तु उसकी विचारधारा पूरी तरह 'सम्प्रदायवादी' और 'राष्ट्रीय सोच के विपरीत' है और उस बात को प्रमाणित करने वाले अनेक प्रमाण दिये तो नेहरू जी चकित रह गये।

कट्टर सम्प्रदायवादी किन्तु बहुत चालाक

शेख अब्दुल्ला एक कट्टरपंथी मुसलमान था। उसके द्वारा स्थापित मुस्लिम कान्फ्रेन्स ने राज्य में गोहत्या पर लगे प्रतिबन्ध और हिन्दी की शिक्षा के विरुद्ध आन्दोलन चलाया था। राज्य की विभिन्न प्रतिनिधि संस्थाओं और सेवाओं में मुसलमानों क प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए दबाव बनाये रखना मुस्लिम कान्फ्रेन्स का मुख्य कार्य होत था। राज्य से डोगरा शासन समाप्त कर उसके स्थान पर मुस्लिम प्रभुत्व की स्थापना उसका वास्तविक लक्ष्य था। किन्तु शेख अब्दुल्ला बहुत चालाक व्यक्ति था। उसने श्री जवाहर लाल नेहरू और खान अब्दुल गफ्फार खाँ जैसे राष्ट्रीय नेताओं से भी संबंध बना रखे थे। उन्होंने उसे सुझाया कि राष्ट्रीय स्तर पर महत्त्व प्राप्त करने के लिए उसको अपनी संस्था का नाम बदलना चाहिए। तदनुसार १९३९ में उसने अपनी 'मुस्लिम कान्फ्रेन्स' को 'नेशनल कान्फ्रेन्स' का मुखौटा पहना दिया।

गिलगित को षड्यन्त्र का शिकार बनाया

कश्मीर का सुल्तान बनना उसके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा थी। उसके लिए वह कुछ भी कर सकता था। चौथे दशक के आरंभ में उसने अंग्रेजों के इशारे पर कश्मीर में हिंसात्मक उपद्रव आरंभ करवाये और महाराजा हरिसिंह को प्रशासनिक

सुधार सुझाने के लिए ग्लैन्सी आयोग (Glancey Commission) नियुक्त करने पर विवश कर दिया। ग्लैन्सी महोदय भारत सरकार की गुप्तचर सेवा के प्रमुख रह चुके थे। उन्होंने प्रशासनिक सुधार के नाम पर महाराजा को गिलगित का क्षेत्र अंग्रेजों को ६० वर्षों के लिए पट्टे पर देने हेतु विवश किया। उसने एक तीर से दो शिकार किये। उसके निर्णय से जहाँ एक ओर गिलगित अंग्रेजों के अधिकार-क्षेत्र में गया, वहीं दूसरी ओर वह अपने पुराने हस्तक शेख अब्दुल्ला को वहाँ राजनीतिक हस्ती के रूप में प्रस्थापित करने में सफल हुआ। उसके पहले महाराजा के प्रभाव के कारण गिलगित क्षेत्र में शेख की दाल नहीं गलती थी, यद्यपि वह मुस्लिम-बहुल क्षेत्र था।

गिरगिट का अवतार

उसकी अवसरवादिता का एक और नमूना देखने योग्य है। २४ जुलाई १९४४ को उसने पाकिस्तान की माँग पर अड़े हुए मोहम्मद अली जिन्ना का जोर-शोर से स्वागत और समर्थन किया, किन्तु जब उसने देखा कि जिन्ना ने उसको मुँह नहीं लगाया तो गिरगिट की भाँति रंग बदलकर एक ही सप्ताह पश्चात् वह महाराजा हरिसिंह के स्वागत में लाल कालीन बिछाने और उनके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने जम्मू पहुँच गया। उसको रंग बदलते देर नहीं लगती थी। अतः जिन महाराजा के स्वागत में उसने अभी फूल बरसाये थे, कुछ सप्ताह पश्चात् उन्हीं के विरुद्ध उसने 'नया कश्मीर' नाम से एक आन्दोलन साम्यवादियों के इशारे और सहयोग से प्रारंभ कर दिया। वह किसी का भी दामन पकड़ लेता था और समय आने पर छोड़ देता था। केवल एक ही बात जिसे उसने मरते दम तक नहीं छोड़ा, वह थी उसकी कश्मीर का स्वतंत्र सुल्तान बनने की इच्छा।

नेहरू जी की वह दुर्भाग्यपूर्ण भूल!

यह उसकी कुशलता ही मानी जायेगी कि उसने भारत के लोकप्रिय नेता जवाहरलाल नेहरू का विश्वास प्राप्त कर लिया था। उनका खुला समर्थन शेख के राजनीतिक जीवन का बहुत बड़ा संबल सिद्ध हुआ। उनके प्रयासों से शेख अब्दुल्ला अखिल भारतीय रियासती लोक कान्फ्रेन्स का अध्यक्ष बना। इसी कान्फ्रेन्स के झण्डे के नीचे उसने सन् १९४६ में महाराजा के विरुद्ध 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन प्रारंभ किया था। नेहरूजी ने उस आन्दोलन के समर्थन में श्रीनगर पहुँचने की घोषणा की।

इस घटना के कारण नेहरू और महाराजा के बीच एक ऐसी खाई बन गयी, जो अन्त तक भरी नहीं जा सकी और जम्मू-कश्मीर का भारत में स्वाभाविक रूप से विलय होने में बहुत बड़ी बाधा सिद्ध हुई। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस घटना ने नेहरू को ऐसा प्रभावित किया कि एक ओर जहाँ वे महाराजा हरिसिंह की देशभक्ति को पहचान नहीं सके, वहीं दूसरी ओर वे शेख के वास्तविक मंसूबों को नहीं समझ सके और कश्मीर की वर्तमान दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति उसी भूल का दुष्परिणाम है।

महाराजा के विरुद्ध चलाये गये 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में शेख अब्दुल्ला तीन वर्ष के कारावास की सजा काट रहा था। तभी कबाइलियों की आड़ में पाकिस्तानी सेना कश्मीर में प्रवेश करने लगी। स्थिति का लाभ उठाने में निपुण शेख अब्दुल्ला इस अवसर को कैसे जाने देता! उसने २६ सितम्बर १९४७ को महाराजा हरिसिंह को एक पत्र लिखकर अपने पिछले कार्यों के लिए पश्चात्ताप प्रकट किया और क्षमा माँगते हुए उनके प्रति भविष्य में निष्ठावान् रहने का वचन भी दिया। उसने अपने इस पत्र में अपने और महाराजा के बीच "गलतफहमी" पैदा करने का दोष जम्मू-कश्मीर के पूर्व-प्रधानमंत्री रामचन्द्र काक के मत्थे बड़ी चतुराई से मढ़ दिया। देश के राष्ट्रीय नेतृत्व की सलाह पर और श्री मेहर चन्द महाजन जैसे शुभचिन्तकों के आग्रह पर २९ सितम्बर १९४७ के दिन महाराजा ने उस माफीनामे के आधार पर उसको मुक्त करने का आदेश दे दिया।

भारत के वे तमाम बुद्धिजीवी, जो आज भी शेख अब्दुल्ला की प्रामाणिकता और राष्ट्रभक्ति के गुण गाते नहीं थकते, उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि जेल से बाहर आते ही ५ अक्टूबर १९४७ को शेख ने अपने सार्वजनिक भाषण में स्पष्ट कहा था कि "कश्मीर के सामने इस समय तीन विकल्प हैं—वह भारत में शामिल हो, पाकिस्तान में विलय हो जाये या फिर अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखे।" इस तीसरे विकल्प की चर्चा से उसके मन की वास्तविक भावनाओं का पता लग जाता है।

पाकिस्तान से साँठगाँठ का प्रयास

शेख के आन्तरिक विचारों को उजागर करने वाली एक और घटना उल्लेखनीय है। जेल से छूटते ही उसने अपने दो साथियों—बख्शी गुलाम मुहम्मद और ख्वाजा गुलाम मोहम्मद सादिक को जिन्ना से मिलने लाहौर भेजा और सौदा करना चाहा

कि यदि जिन्ना आन्तरिक स्वायत्तता शेख अब्दुल्ला को सौंप दें, अर्थात् शेख अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री बना दें तो नेशनल कान्फ्रेन्स कश्मीर को पाकिस्तान में मिलाने का यत्न कर सकती है। परन्तु जिन्ना ने कोरा जवाब दे दिया और बिना शर्त पूर्ण समर्पण करने को कहा। इसकी चर्चा प्रो. बलराज मधोक की पुस्तक 'खण्डित कश्मीर', डॉ. गजेन्द्रगडकर की 'Kashmir: Prospect & Retrospect', मीर कासिम की 'दास्ताने-हयात' तथा अब्दुल्ला की आत्मकथा 'आतिशे चिनार' में मिलती है।

वैसे तो शेख को कारागार में रहते हुए पाकिस्तानी कबाइलियों के राज्य में सशस्त्र प्रवेश की जानकारी मिल गयी थी, किन्तु छूटने के बाद उसको पाकिस्तानी आक्रमण की तैयारियों की विस्तृत जानकारी मिली। तब वह कश्मीर में ठहरकर उसकी रक्षा-व्यवस्था आदि के बारे में प्रयत्न करने के स्थान पर, अपने परिवार सहित कश्मीर से भागकर इन्दौर अपने साले के पास चला गया था। श्री मेहर चन्द्र महाजन ने लिखा है कि जब वे राज्य के विलय की चर्चा करने २६ अक्टूबर १९४७ को प्रधानमंत्री के निवास पर गये तो उन्होंने उसे पर्दे के पीछे एक कमरे में बैठा पाया। भारतीय सेना ने श्रीनगर को पाकिस्तानियों के चंगुल से जब मुक्त करा लिया, तो उसके पश्चात् 'शेरे कश्मीर' शेख साहेब भारतीय वायुसेना के साथ श्रीनगर पहुँचे थे।

इसे भारतीय इतिहास व राजनीति की विडम्बना ही कहना पड़ता है कि शेख के इन कारनामों के बाद भी श्री नेहरू ने रियासत का भारत में विलय स्वीकार करते समय महाराजा को विवश किया था कि वे शेख अब्दुल्ला को जम्मू-कश्मीर का आपात्कालीन प्रशासक नियुक्त करें और राज्य की बागडोर उसके हाथ में सौंप दें।

शेख ने भारतीय सेना को आगे बढ़ने से रोका

भारत तो क्या, जम्मू-कश्मीर राज्य के सम्पूर्ण क्षेत्र की भी रक्षा करने में शेख को कोई रुचि नहीं थी। उसका ध्यान तो मात्र कश्मीर घाटी को बचाने में था। इसका स्पष्ट प्रमाण गिलगित, कोटली, बलतिस्तान, मीरपुर, मुजफ्फराबाद, भिम्बर आदि की घटनाएं सदा देंगी। २७ अक्टूबर १९४७ को जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय सम्पन्न होते ही भारतीय सेना वायु-मार्ग से श्रीनगर पहुँच गयी थी। उसने मात्र १० दिन में ७ नवम्बर तक सम्पूर्ण कश्मीर घाटी को आक्रमणकारियों से मुक्त करा लिया था। अब उसको राज्य के शेष क्षेत्रों की मुक्ति के लिए आगे बढ़ना था। गिलगित के सैनिक गवर्नर ब्रिगेडियर घनसारा सिंह और मीरपुर, भिम्बर, कोटली, मुजफ्फराबाद आदि की जनता तथा जम्मू घाटी के हिन्दू नेता उन क्षेत्रों को पाकिस्तानी

चंगुल से मुक्त कराने के लिए सेना के अधिकारियों के सामने गिड़गिड़ा रहे थे। किन्तु भारतीय सेना को आगे नहीं बढ़ने दिया गया। जम्मू क्षेत्र के सेनाधिकारी ब्रिगेडियर परांजपे ने स्पष्ट शब्दों में हिन्दू नेताओं को उसका कारण बताते हुए कहा था कि "श्री नेहरू ने भारतीय सेना की 'ओवर आल कमान' शेख अब्दुल्ला को सौंप रखी है, इसलिए उनकी आज्ञा के बिना सेना आगे नहीं बढ़ सकती।" नेहरू के इस अदूरदर्शी निर्देश का परिणाम है आज की जम्मू-कश्मीर की स्थिति।

न्यायमूर्ति कुँवर दिलीपसिंह को भारत सरकार ने अपना 'एजेंट जनरल' बनाकर नवम्बर १९४७ में जम्मू भेजा था। जब उन्होंने स्वयं देखा कि शेख अब्दुल्ला भारतीय सेना को राज्य के शेष भागों को मुक्त कराने के लिए आगे बढ़ने नहीं दे रहा है, तो वे हैरान रह गये और इसकी जानकारी देने दिल्ली गये। किन्तु श्री नेहरू ने उनकी बात नहीं सुनी। दुःखी दिलीपसिंह ने विवश होकर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और कहा कि वे मात्र भारी वेतन पाने के लिए भारत के 'एजेंट जनरल' नहीं बने थे; यदि उस पद पर रहकर वे भारत के हितों की रक्षा नहीं कर सकते हैं, तो वे उस पद पर नहीं रहना चाहेंगे। वे कश्मीर वापस नहीं गये।

ब्रिटिश-अमेरिकी हितों का सेवक

शेख की वकालत करने वाले इसका उत्तर दें कि शेख ने गिलगित जैसे सामरिक महत्त्व के क्षेत्र की रक्षा की चिन्ता क्यों नहीं की ? कोई आश्चर्य नहीं है कि ऐसा करके वह ब्रिटिश गुप्तचर विभाग के निर्देशों का, जिसकी सेवा शेख अब्दुल्ला १९३२ से करता आ रहा था, पालन कर रहा हो। ब्रिटेन, अमरीका जैसे देश अपने प्रतिद्वन्द्वी सोवियत संघ के चारों ओर अपनी सैनिक घेराबन्दी करने के लिए गिलगित के महत्त्व को जानते थे। गिलगित के भारत में रहने से उनकी व्यूहरचना सफल नहीं हो सकती थी। शेख को इसकी जानकारी दी गयी होगी। जो भी हो, शेख ने भारतीय सेना को गिलगित मुक्त कराने का आदेश न देकर अपने आकाओं को प्रसन्न रखने का काम किया। वैसे भी उसे कश्मीर घाटी से ही लगाव था, न कि पंजाबी भाषी मुसलमानों के क्षेत्रों से।

शेख अब्दुल्ला द्वारा कोटली, मीरपुर, मुजफ्फराबाद जैसे क्षेत्रों की उपेक्षा का एक अतिरिक्त कारण यह था कि वहाँ पहले से ही कुछ हिन्दू रह रहे थे और देश के विभाजन के बाद पाकिस्तान से विस्थापित होकर भी हजारों की संख्या में हिन्दू

वहाँ पहुँचे थे। उनकी रक्षा को शेख अब्दुल्ला अपने राजनीतिक उद्देश्यों में बाधक मानता था, इसलिए उसने उनकी जान-बूझकर उपेक्षा की।

विशाल हिन्दू जनसंख्या के संहार का उत्तरदायी

शेख द्वारा गैर-कश्मीरी मुसलमानों व हिन्दुओं के प्रति विशेषकर, तथा भारतीय हितों के प्रति सामान्य रूप से, कोई रुचि न लेने का परिणाम यह हुआ कि नवम्बर १९४७ तक गिलगित, बलतिस्तान, मीरपुर, कोटली, भिम्बर, मुजफ्फराबाद आदि क्षेत्रों में पाकिस्तानी आक्रान्ताओं तथा स्थानीय मुसलमानों ने लगभग ९५,००० हिन्दू तो मौत के घाट उतार दिये और जो ८०,००० किसी प्रकार प्राण बचाकर जम्मू या कश्मीर घाटी में पहुँच सके, उन्हें शेख ने कश्मीर घाटी में ठहरने नहीं दिया तथा जो जम्मू पहुँचे, उन्हें राज्य की नागरिकता नहीं दी। शेख की उत्तराधिकारी सरकारों ने भी उन विस्थापितों को आज तक नागरिक अधिकारों से वंचित रखा हुआ है। इन लोगों के साथ ऐसा भेदभाव इसीलिए किया गया और आज भी किया जा रहा है कि वे हिन्दू हैं और हिन्दू ही बने रहना चाहते हैं।

वर्तमान विकृत मानसिकता का जनक

घाटी स्थित श्रीनगर, बारामूला, सोपुर या अनन्तनाग के बंदूकधारी युवक हों अथवा पाक-अधिकृत मुजफ्फराबाद-गिलगित के नेतागण हों, सभी की आकांक्षाएं न्यूनाधिक समान हैं। भारत के प्रति सर्वत्र घृणा व दुराव देखा जा सकता है। यदि उनमें कोई आपसी मतभेद है, तो केवल इस बात पर कि कश्मीर स्वतन्त्र रहे या पाकिस्तान के साथ। किन्तु एक बात पर सभी एकमत दिखाई देते हैं कि क्षेत्र में इस्लामी राज्य हो। यह भड़का पृथकूतावाद और साम्प्रदायिक उन्माद शेख अब्दुल्ला की देन है। उसके विचारों को समझने के लिए उसके उस भाषण को याद करना होगा जो उसने राज्य का भारत में विलय होने के तुरन्त बाद श्रीनगर में आयोजित पहली जनसभा में किया था। उसने कहा था : "हमने कश्मीर का ताज खाक में से उठाया है। हम हिन्दुस्तान में जायें या पाकिस्तान में, वह बाद का सवाल है। पहले हमने अपनी आजादी मुकम्मिल करनी है।"

अलगाव की डगर पर

शेख ने सत्ता संभालते ही 'आजादी' की अपनी संकल्पना को साकार करने के लिए एक के बाद दूसरा पग आगे बढ़ाना आरम्भ किया। यद्यपि महाराजा तब

राज्य के प्रमुख थे, तो भी यह दिखाने के लिए कि वे मात्र दिखावटी हैं—वास्तविक शासक तो वही है, उसने महाराजा की खुली उपेक्षा करना आरम्भ किया।

कश्मीर से संसद् के लिए चार सदस्य भेजे जाने थे। इनमें में से दो सदस्य महाराजा को भेजने थे और दो को विधान-सभा ने चुनकर भेजना था। शेख ने चारों सदस्य स्वयं अपनी पंसद से भेज दिये। उसने राज्य-प्रशासन के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हिन्दू अधिकारियों को चुन-चुन कर निकालने और सभी पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति करने की खुली नीति अपनायी। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३७० का सहारा लेकर उसने अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप कश्मीर को स्वतंत्र राज्य बनाने की दिशा में राज्य के लिए एक अलग संविधान, अलग मुखिया और एक अलग झण्डे की व्यवस्था जमायी।

कश्मीरी की उपेक्षा कर उर्दू थोपी

भारतीय संविधान में देश की १५ मान्य भाषाओं में कश्मीरी भाषा को भी सम्मिलित किया गया है, इसलिए स्वाभाविक ही जम्मू-कश्मीर के लोग आशा करते थे कि कश्मीरी भाषा को जम्मू-कश्मीर की प्रशासनिक भाषा स्वीकार किया जायेगा। किन्तु शेख अब्दुल्ला का इस्लामी कठमुल्लापन उसके विवेक पर हावी हुआ और कश्मीरी भाषा को वह गौरव प्राप्त नहीं हो सका। उसके स्थान पर उर्दू को राज्य की प्रशासनिक भाषा बनाया गया। कश्मीरी भाषा के प्रति शेख की आपत्ति का कारण यह था कि उस भाषा का उद्गम प्राचीन संस्कृत भाषा से है और वह भारतीयता से जुड़ी हुई है। शेख को ये दोनों ही बातें रास नहीं आती थीं, इसलिए उसने संविधान की भी उपेक्षा कर दी। वैसे भी उसके मानस में भारतीय संविधान के लिए निष्ठा या लगाव नहीं था।

देशद्रोही करतूतों के विरुद्ध छात्र एवं जनान्दोलन

१९४८ में जम्मू कालेज के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर कालेज अधिकारियों ने शेख के इशारे पर राष्ट्रीय ध्वज के स्थान पर नेशनल कान्फ्रेंस का लाल झण्डा फहराया। कालेज के छात्रों ने राष्ट्रीय ध्वज की इस अवहेलना का जब विरोध किया तो उन पर सौ-सौ रुपये का जुर्माना किया गया। जम्मू की जनता में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। देखते-देखते यह विद्यार्थी आन्दोलन जन-आन्दोलन बनने लगा। शेख को यह सहन नहीं हुआ। उसने जन-भावनाओं को कुचलने की

ठान ली। आन्दोलनकारी विद्यार्थियों को कालेज से निकाला गया और जम्मू नगर में ७२ घंटे का कर्फ्यू लगाकर हिन्दु नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। विद्यार्थियों की भी व्यापक पकड़-धकड़ की गयी। पुलिस के अत्याचार के विरुद्ध बंदी बनाये गये नागरिकों व विद्यार्थियों ने जेल में ३५ दिन भूख-हड़ताल की। आखिरकार शेख सरकार को झुकना पड़ा और मरणासन्न विद्यार्थियों को जेल से मुक्त किया गया। शेख के राष्ट्रविराधी रवैये से सांसदों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और डॉ. रघुवीर, एम. एल. चट्टोपाध्याय तथा खाडिलकर का तीन सदस्यीय शिष्टमंडल स्थिति का अध्ययन करने के लिए जम्मू पहुँचा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं अन्य धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं और विद्यार्थी संगठनों ने शेख की गतिविधियों का उन्हें पूरा विवरण दिया। शेख को भारतीय सांसदों का जम्मू आकर लोगों से मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगा। उन लोगों के जम्मू से रवाना होते ही पं. प्रेमनाथ डोगरा तथा अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। किन्तु शेख की आशा और कल्पना के विपरीत पूरे जम्मू प्रान्त में नेताओं की गिरफ्तारी के विरुद्ध आन्दोलन भड़क उठा। दस महीने तक पूरे राज्य में सभाएँ, जुलूस और सत्याग्रह चला। सैकड़ों लोगों ने गिरफ्तारी दी। सरकारी दमन-चक्र भी खूब चला। किन्तु जन-रोष दबाया नहीं जा सका। शेख को आखिरकार झुकना पड़ा और हिन्दु नेता ससम्मान छूटे।

राष्ट्र-ध्वज की अवहेलना के विरुद्ध छेड़े गये जन-आन्दोलन के सामने पराजित होने के बाद भी शेख में कोई परिवर्तन नहीं आया। उसकी भारत व हिन्दू विरोधी गतिविधियाँ उग्र रूप धारण करने लगीं। संविधान-सभा के वरिष्ठ सदस्य श्री शिब्बनलाल सक्सेना स्थिति का अध्ययन करने जम्मू-कश्मीर गये। उन्होंने दिल्ली वापस आकर सरदार पटेल को एक विस्तृत रिपोर्ट दी, जिसकी निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं :-

"कश्मीर मसले का निदान जिस तरीके से किया जा रहा है उससे मुझे अत्यधिक वेदना होती है। आप इस तथ्य को भलीभाँति जानते हैं कि भारतवासियों की कश्मीर मसले में कितनी गहरी अभिरुचि है। हमने वहाँ पर युद्ध में सौ करोड़ रुपये व्यय किये हैं और हमारी सेना के अनगनित शूर-वीरों ने अपने जीवन का होम वहाँ पर किया है। अतः यदि हम कश्मीर को खो देते हैं तो देशवासी हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि हम एक के बाद एक भारी भूल वहाँ पर कर रहे हैं। आज ही कराची में हुए युद्ध-विराम संबंधी समझौते से मुझे अत्यधिक मानसिक वेदना हुई है।

"मैं पिछले दिनों स्वयं कश्मीर के हालात अपनी आँखों से देखकर वहाँ से वापस आया हूँ। इससे बड़ी मूर्खतापूर्ण बात दूसरी कोई नहीं होगी, यदि हम यह समझते हों कि वहाँ जनमतसंग्रह भारत के पक्ष में होगा। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि शेख अब्दुल्ला का मुसलमान जनता पर व्यापक प्रभाव है, लेकिन जिस तरह गाँधी जी और जवाहरलाल जी के लाख समर्थन के बावजूद इस देश की जनता हिन्दी की पक्षधर है, ('हिन्दुस्तानी' की नहीं,) उसी तरह किसी भी समझदार व्यक्ति को कश्मीर में जनमतसंग्रह भारत के पक्ष में होने की भूल अपने दिल में नहीं पालनी चाहिए। पहले हमने अनावश्यक रूप से जनमतसंग्रह कराने की सिद्धता दिखाकर, उसके बाद मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाकर और अब इस समय युद्ध-विराम स्वीकार करके स्वयं मुसीबतों को निमंत्रित किया है, जबकि हमारी सेनाएँ लगातार आगे बढ़ रही थीं। इसके फलस्वरूप भारतीय सेना के जवानों में हम राजनीतिज्ञों के प्रति जबर्दस्त गहरा असंतोष है। हालाँकि इसके बावजूद उनके हौसले आश्चर्यजनक रूप से बुलन्द हैं, लेकिन राजनेताओं द्वारा की जा रही लगातार गंभीर भूलों से उनका मनोबल टूट जायेगा। कश्मीर में स्थिति का अत्यंत गहराई से अध्ययन करने के बाद मेरा यह सुनिश्चित मत है कि यदि हम कश्मीर को बचाना चाहते हैं तो हमें अपने भूभाग से एक-एक हमलावर को खदेड़ बाहर करना होगा। और यह तभी हो सकता है जब हम वार्ता की प्रक्रिया को पूरी तरह बन्द कर दें। लेकिन हम ऐसा न करके दुश्मन को लगातार रियायतें दे रहे हैं।

"..... जब मैं ऐसी गम्भीर भूलें होती हुई देखता हूँ तो मेरी आत्मा मुझे कचोटने लगती है। और जब मैं अपने अंतरतम की इन गंभीर भावनाओं को प्रकट करने लगता हूँ, तब आप सब लोग मुझे अनुशासन का डंडा दिखाने लगते हैं....."

डा. मुखर्जी का बलिदान : हत्या की पूर्व-सूचना

अन्ततोगत्वा प्रजा परिषद् को शेख अब्दुल्ला की इन राष्ट्रघाती गतिविधियों के विरुद्ध सत्याग्रह का मार्ग अपनाना पड़ा जो २२ नवम्बर १९५२ को प्रारंभ हुआ। पं. प्रेमनाथ डोगरा और उनके साथियों की गिरफ्तारी के बाद सत्याग्रह राज्य की सीमाओं को लांघकर देशव्यापी बना। भारतीय जनसंघ, हिन्दू महासभा तथा राम राज्य परिषद् उसमें सम्मिलित हो गये। भारतीय जनसंघ के संस्थापक अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने शेख सरकार द्वारा बनायी गयी परमिट प्रणाली को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। यह प्रणाली जम्मू-कश्मीर को भारत से अलग करती थी।

उन्हें अपने लिए निर्धारित इस महान् राष्ट्रीय कार्य में सफलता तो अवश्य मिली, परमिट प्रणाली समाप्त हुई, किन्तु इस राष्ट्रयज्ञ में उन्हें अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। राज्य में बिना परमिट प्रवेश करने पर डॉ. मुखर्जी को शेख अब्दुल्ला ने बन्दी बनाया। २३ जून १९५३ को अर्धरात्रि में उन्हें कारावास में, उनके मना करने पर भी, एक ऐसा इंजेक्शन दिया गया कि अगले दिन प्रातः उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। इस संबंध में यह स्मणीय है कि २३ जून १९५३ को न्यायमूर्ति जियालाल किलम की अदालत में उनकी बंदीप्रत्यक्षीकरण याचिका की पैरवी बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से की थी। उससे सभी को विश्वास हो गया था कि अगले दिन दिये जाने वाले अदालती निर्णय में उन्हें मुक्त कर दिया जायेगा। ऐसा लगता है कि तभी उच्च स्तर पर उनकी मेडिकल हत्या का षड्यंत्र रचा गया। २३ जून १९५३ की प्रातः मुकदमे की अन्तिम सुनवाई से पहले ही एक पुलिस अधिकारी और कुछ लोग बैरिस्टर त्रिवेदी से नीडो होटल में मिले थे। उन्होंने चेतावनी भरा संकेत दिया कि डॉ. मुखर्जी को तत्काल रिहा कराया जाय, अन्यथा उनकी हत्या कर दी जायेगी। उनकी वह सूचना सत्य सिद्ध हुई। भारत माता का लाड़ला सपूत राष्ट्रीय अखंडता की बलिवेदी पर न्यौछावर हो गया।

परमिट प्रणाली हटी

इस घटना से पूर्व डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का शेख अब्दुल्ला और श्री नेहरू से इसी परमिट प्रणाली के संबंध में पत्र-व्यवहार हुआ था। उन पत्रों से यह पता चलता है कि पंडित नेहरू ने देश-हित और वास्तविक स्थिति को स्वीकार न करने की ठान ली थी। किन्तु डॉ. मुखर्जी के बलिदान ने देश के नागरिकों को हिला दिया। शेख अब्दुल्ला पर हत्या का आरोप लगा। पं. नेहरू को हस्तक्षेप करना पड़ा। उन्होंने प्रजा परिषद् से आन्दोलन वापस लेने की अपील की और आश्वासन दिया कि परमिट प्रणाली अविलंब समाप्त होगी। प्रजा परिषद् ने तो आन्दोलन बन्द कर दिया, परन्तु शेख अब्दुल्ला ने अपने आचरण और सोच में कोई सुधार नहीं किया। उल्टे, वह भारत के सभी नेताओं को फिरकापरस्त कहने लगा। पंडित नेहरू पर भी अविश्वास करने लगा और भारत के साथ विलय की स्थिति को भी चुनौती देने लगा।

शेख को दिये गये प्रोत्साहन से महाराजा व्यथित

शेख की दृष्टि तो पहले से ही जम्मू-कश्मीर को अपनी स्वतंत्र सल्तनत बनाने पर लगी हुई थी। अमरीका और ब्रिटेन जैसी साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी उसे प्रोत्साहित

कर रही थीं। महाराजा हरिसिंह शेख के साम्प्रदायिक और भारत-विरोधी व हिन्दुत्व-विरोधी चरित्र से भलीभाँति परिचित थे। इसे राष्ट्र का दुर्भाग्य ही कहना होगा कि उनकी स्पष्ट चेतावनी के बाद भी, उसी शेख को नेहरू जी ने हठपूर्वक जम्मू-कश्मीर का बेताज बादशाह बनवाया। उसके क्रियाकलाप एक के बाद दूसरे सामने आने लगे, फिर भी केन्द्रीय नेतृत्व नहीं चेता। महाराजा की मानसिक वेदना का विवरण और कोई क्या कर सकता है, जितना कि उनका स्वयं का एक पत्र करता है। (देखिए परिशिष्ट ३) महाराजा हरिसिंह ने सरदार वल्लभभाई पटेल को ३१ जनवरी १९४८ को लिखे अपने उस विस्तृत पत्र में मीरपुर, पुंछ, मुजफ्फराबाद, मंगला, अलीबेग, गुरुद्वारा, भिंबर, देवा, बट्टा ला, राजौरी, छम्ब, नौशेरा, झंगर, कोटली, गिलगित, बलतिस्तान, कारगिल, लद्दाख आदि क्षेत्रों में पाकिस्तानी नियंत्रण और सैनिक दबाव पर गम्भीरतम शब्दों में चिन्ता प्रकट की थी। संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर प्रकरण को ले जाने तथा सुरक्षा परिषद् में चल रहे दुष्चक्र से भी वे अत्यंत व्यग्र थे। अतः उन्होंने सरदार पटेल से युद्ध के मोर्चे पर भारतीय सेनाओं द्वारा पाकिस्तानी सेना को खदेड़ने का प्रबल आग्रह किया था। इसके साथ ही अत्यंत मार्मिक शब्दों में उन्होंने उप-प्रधानमंत्री सरदार पटेल को लिखा था कि जम्मू-कश्मीर राज्य के साधारण नागरिकों की विनाश-लीला उनसे देखी नहीं जा रही है और इसलिए अनेक बार उनके मन में यह विचार आता है कि वे या तो सैनिक कमान स्वयं संभालकर लड़ाई के मोर्चे पर आगे बढ़ें, या फिर महाराजा के रूप में राज्य के अपने सांविधानिक मुखिया के दायित्व को न छोड़ते हुए भी जम्मू-कश्मीर राज्य से बाहर इसलिए निवास करें कि राज्य की जनता अपनी इस दुःस्थिति के लिए न तो उन्हें जिम्मेदार ठहराये और न ही सहायता माँगने के लिए उनके पास पहुँच सके। इनके अतिरिक्त अन्तिम उपाय के रूप में उन्हें जम्मू-कश्मीर राज्य के भारतीय संघ में विलय को रद्द करना एक महत्त्वपूर्ण विकल्प दिखाई दे रहा है। उनके द्वारा विलय-पत्र को वापस लेने का यह तो परिणाम होगा कि सुरक्षा-परिषद् कश्मीर प्रकरण पर आगे विचार नहीं कर सकेगी, क्योंकि उस स्थिति में जम्मू-कश्मीर भारतीय संघ का एक अविभाज्य अंग न रहने के कारण भारत द्वारा सुरक्षा-परिषद् में ले जाया गया मामला स्वतः निरर्थक हो जायेगा। इससे लाभ यह होगा कि सुरक्षा-परिषद् ने अपने सम्मुख उपस्थित कश्मीर पर पाकिस्तानी हमले और उसके निवारण के मामले में साम्राज्यवादी शक्तियों की शह पर जिस तरह सर्वथा अप्रांसगिक प्रश्न कश्मीर के भारतीय संघ में विलय और

रियासत में अन्तरिम सरकार के गठन की वैधता की जाँच करने को भी शामिल कर उसका दायरा विस्तृत कर दिया है, वह भी व्यर्थ हो जायेगा। वस्तुतः सुरक्षा-परिषद् को ऐसा करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था और सुरक्षा-परिषद् के ऐसा करते ही भारत सरकार को संयुक्त राष्ट्र संघ से की गयी अपनी शिकायत को वापस ले लेना चाहिए था।

अन्त में महाराजा हरिसिंह ने इन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर सरदार पटेल से मार्गदर्शन करने की प्रार्थना की थी।

...और पर्दा हटने लगा

फरवरी १९४८ में भारतीय संविधान-सभा के दो प्रमुख सदस्यों डॉ. रघुवीर और एम. एल. चट्टोपाध्याय ने कश्मीर की यात्रा कर अपनी जो रिपोर्ट कांग्रेस संसदीय दल के सामने पेश की थी, उसमें भी शेख के स्वतंत्र कश्मीर के स्वप्न की चर्चा की गयी थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ से लौटते हुए स्वयं शेख अब्दुल्ला ने ब्रिटेन के पत्रकार माइकल डेविडसन और वार्ड प्राइस को अपनी एक भेंटवार्ता में 'स्वतंत्र कश्मीर' की योजना स्पष्ट शब्दों में बता कर इस बात की पुष्टि कर दी थी। जब इसकी जानकारी समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई तो सरदार पटेल ने शेख अब्दुल्ला को बुलाकर बड़ी फटकार लगायी और उसने भविष्य में ऐसी गलती न करने का आश्वासन भी दिया था। लेकिन वस्तुतः उसके इरादों में कोई परिवर्तन नहीं आया। उल्टे उसके इस साक्षात्कार की भारत सरकार को सूचना देने वाले आई. बी. के अधिकारी को कश्मीर छोड़ने के लिए बाध्य किया गया। नवम्बर १९५२ में अमरीकी राष्ट्रपति के चुनाव में पराजित डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार स्टीवेन्सन से उसकी गहरी साँठ-गाँठ बनी रही और आजाद कश्मीर के ताने-बाने बुने जाते रहे।

शेख बेनकाब : नेहरू स्तब्ध

यह तो पहले कहा ही जा चुका है कि शेख अब्दुल्ला अंग्रेज सरकार का हस्तक बनकर कार्य कर रहा था। अंग्रेज गुप्तचर अधिकारियों के साथ हुए उसके पत्राचार की मूल प्रतियाँ भारत सरकार के हाथ लग गयीं। मई १९५३ में तत्कालीन गृहमन्त्री डा. कैलाशनाथ काटजू और गुप्तचर सेवा के निदेशक जी. के. हांडू ने उस पत्रावली और अन्य दस्तावेजों को श्री नेहरू के सामने रखा, तो नेहरू हतप्रभ देखते रहे गये। इन पत्रों में प्रजा-परिषद् के आन्दोलन को सख्ती से कुचलने का निर्देश देने वाला

नेहरू का पत्र भी शामिल था। श्री नेहरू उन पत्रों एवं दस्तावेजों की फोटो प्रतिलिपियाँ लेकर श्रीनगर पहुँचे और शेख अब्दुल्ला को उन्हें दिखाकर जवाब माँगा। नेहरू जी की बातों का उत्तर देने के बजाय शेख उनकी ओर देखते हुए मुस्कराता रहा। नेहरू ने शेख से इसका भी कारण जानना चाहा कि दिल्ली समझौते को हुए १० मास का समय व्यतीत हो चुका है, फिर भी जम्मू-कश्मीर संविधान-सभा द्वारा उसका अनुमोदन क्यों नहीं हुआ ? शेख ने अत्यन्त चतुराई से मामला टालने के लिए, उसके लिए अपने दो प्रमुख सहयोगियों—बख्शी गुलाम मुहम्मद और गुलाम मुहम्मद सादिक को जिम्मेदार बताया। यह सुनकर श्री नेहरू एक क्षण रुके बिना बख्शी गुलाम मुहम्मद के निवास पर जा पहुँचे। किन्तु जब वहाँ उनको शेख के असली इरादों का पता चला तो वे हैरान रह गये। वहाँ मिली जानकारी के सम्बन्ध में नेहरू ने शेख की प्रतिक्रिया जाननी चाही। शेख ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया और मंद-मंद मुस्कराता रहा। इस पर श्री नेहरू ने शेख अब्दुल्ला को नेशनल कान्फ्रेंस की कार्यसमिति की बैठक तुरन्त बुलाने को कहा, जिसे शेख ने अस्वीकार किया। नेहरू के धैर्य का बाँध आखिर टूटा और वे चाय पिये बिना ही उठ खड़े हुए और चलते-चलते उन्होंने कहा, "शेख साहब, अभी तक मैं तुम्हारे साथ जवाहरलाल नेहरू के नाते व्यवहार कर रहा था, लेकिन अब भारत के प्रधानमन्त्री के रूप में तुम्हारे साथ पेश आऊंगा।" इसके बाद श्री नेहरू ने बख्शी गुलाम मुहम्मद से दुबारा भेंट की और उन्हें विश्वास में लेते हुए राज्य का नेतृत्व संभालने के लिए तैयार रहने को कह दिया।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मेडिकल हत्या हो जाने से देश का वायुमंडल बहुत तप्त हो गया था। शेख व भारत सरकार दोनों ही जनता की अदालत में अपराधी के समान खड़े थे। ऐसे वायुमंडल में शेख स्वतंत्र कश्मीर की अपनी योजना को आगे नहीं बढ़ा सका और इसी बीच उसकी अन्य देशघातक गतिविधियों पर से भी पर्दा हट गया। इस संदर्भ में इस घटना का उल्लेख करना आवश्यक है कि शेख ने अपना खेल बिगड़ते देख अपने मन्त्रिमंडल के एक वरिष्ठ सदस्य श्यामलाल सर्राफ को त्यागपत्र देने को कहा। ऐसा करके वह आशा करता था कि उसके विरोधियों व भारत-समर्थक मन्त्रियों के हौसले टूट जायेंगे और उसका मार्ग साफ हो जायेगा। किन्तु यह दाँव उसके उल्टा पड़ा। बख्शी, सादिक, गिरधारी लाल डोगरा, डी. पी. धर जैसे निष्ठावान् लोग सर्राफ के पीछे खड़े हो गये। मन्त्रिमंडल में संकट खड़ा हो गया। जब इसकी जानकारी दिल्ली पहुँची तो रफी अहमद किदवई और मौलाना

आजाद जैसे नेताओं ने श्री नेहरू पर शेख के विरुद्ध अविलंब कार्यवाही करने के लिए दबाव डाला। नेहरू के सामने कोई चारा नहीं था। भारत सरकार के निर्देश पर ९ अगस्त १९५३ को शेख अब्दुल्ला को राज्य के प्रधानमन्त्री पद से बर्खास्त करके बंदी बना लिया गया।

शेख अब्दुल्ला के देशघाती मन्सूबों को नेहरू जी का न पहचान पाना भारत को बहुत महँगा पड़ा। उन्होंने उसी के सम्मोहन में फँसे होने के कारण देश के संविधान में धारा ३७० को जोड़ा, जो अब राष्ट्र-जीवन का नासूर बन गयी है। जब शेख अब्दुल्ला की राष्ट्रविरोधी मानसिकता व गतिविधियाँ जगजाहिर हुईं, तो उसी समय उस धारा को एकबारगी समाप्त किया जा सकता था। घाटी सहित पूरा देश उस पग का स्वागत करता और राष्ट्र का त्रास सदा के लिए समाप्त हो जाता। पर नेतृत्व की अदूरदर्शिता के कारण वह ऐतिहासिक अवसर हाथ से निकल गया। उस भयंकर भूल का दुष्परिणाम वर्तमान विस्फोटक स्थिति के रूप में हमारे सामने खड़ा है।

धारा ३७० – पृथकतावादी विष

भारतीय संविधान की धारा ३७० जम्मू-कश्मीर राज्य को देश के शेष स राज्यों से अलग करती है और वहीं उसको एक भिन्न धरातल पर खड़ा कर दे है। उसका विश्लेषण करते हुए प्रसिद्ध न्यायविद दुर्गादास बसु ने कहा है कि घात धारा को संविधान में किसी विवशता या अनिवार्यता अथवा कानूनी आवश्यक के कारण नहीं, अपितु केवल राजनीतिक तुष्टीकरण के लिए जोड़ा गया था

डॉ. अम्बेडकर का इन्कार

जब तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने भारतीय संविधान के प्रध शिल्पी डॉ. अम्बेडकर से इसकी चर्चा की थी, तो उन्होंने इसका विरोध करते कहा था कि यह धारा देश के लिए घातक सिद्ध होगी, क्योंकि उसके कारण ज कश्मीर राज्य भारत के साथ एकरस होने के स्थान पर विपरीत दिशा में अल अलगाव का मार्ग पकड़ेगा और देश के दूसरे राज्यों को भी गलत प्रेरणाएँ देग पंडित नेहरू ने शेख अब्दुल्ला को डॉ. अंबेडकर के पास इस धारा की आवश्यव पर चर्चा करने के लिए भेजा था। डॉ. अंबेडकर ने शेख की सब बातें सुनने पश्चात् उसको यह कहकर वापस कर दिया था कि "तुम चाहते हो कि भारत कश्मीर की रक्षा इत्यादि की सारी जिम्मेदारी तो रहे, पर भारतीय संसद् का उस कोई अधिकार न हो। मैं भारत का विधि-मंत्री हूँ, मुझे भारत के हितों की रक्षा क है, इसलिए तुम्हारे प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकता।"

संविधान-सभा में भी भारी विरोध

इस इन्कार के पश्चात् पंडित नेहरू ने धारा ३७० का प्रस्ताव रियासती रा मंत्री गोपाल स्वामी आयंगर द्वारा संविधान-सभा में रखवाया था। सभा में इर बहुत विरोध हुआ। विरोध करने वालों में एक मुस्लिम सदस्य श्री हसरत मोह का नाम उल्लेखनीय है। उनकी आपत्ति थी कि इस धारा के द्वारा जम्मू-कश

के साथ पक्षपात क्यों किया जा रहा है ? पंडित नेहरू के निजी हस्तक्षेप और आयंगर के यह आश्वासन देने के पश्चात् कि यह धारा अस्थायी है और शीघ्र ही समाप्त कर दी जायेगी तथा भारतीय संविधान व संसद् का निर्णय शेष भारत के समान जम्मू-कश्मीर पर भी लागू हुआ करेगा, संविधान-सभा ने उसे बड़ी झिझक के साथ स्वीकार किया था ।

धारा ३७० के दुष्परिणाम

१. इस धारा के बने रहने के कारण, भारतीय संविधान की धारा १ और ३७० के अतिरिक्त कोई भी धारा जम्मू-कश्मीर राज्य पर सीधे लागू नहीं होती । शेष धाराओं को तथा संसद् द्वारा पारित कानूनों को वहाँ लागू करने के लिए भारत के राष्ट्रपति की विशेष अनुज्ञा तो चाहिए ही, वहाँ की विधान-सभा की विशेष सहमति भी चाहिए ।

२. इस अनुबंध का राज्य की सामान्य जनता पर और विशेषकर घाटी की मुस्लिम जनता पर यह मनोवैज्ञानिक प्रभाव हुआ कि वे अपने को देश के शेष नागरिकों से अलग मानने लगे । उनमें राष्ट्रीय एकात्मता के स्थान पर क्षेत्रीयता व साम्प्रदायिकता के आधार पर पृथक्ता की भावनाएँ भड़कीं । उनमें यह धारणा जगी कि जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थिति देश में विलीन हुई अन्य पौने छः सौ रियासतों से भिन्न है और जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन महाराजा हरिसिंह द्वारा विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् भी राज्य का भारत में पूर्ण व अन्तिम रूप से विलय नहीं हुआ है । घाटी में विद्यमान पाक समर्थक तत्त्वों, शेख अब्दुल्ला के अनुयायियों और जमात-ए-इस्लामी के लोगों ने, जो कश्मीर को भारत से अलग करके पाकिस्तान में मिलाने का या स्वतंत्र राज्य बनाने का स्वप्न देखते हैं, धारा ३७० के अभिप्राय को इसी रूप में कश्मीर की भोली-भाली जनता को पिछले ४३ वर्षों में समझाया है । शेख अब्दुल्ला द्वारा स्थापित आल जम्मू-कश्मीर प्लेबिसाइट फ्रंट का दि. ७ अप्रैल १९५८ का प्रस्ताव इस प्रचार का ज्वलन्त उदाहरण है । उसमें कहा गया : "जम्मू-कश्मीर राज्य ने अभी तक दोनों डोमीनियनों (भारत और पाकिस्तान) में से किसी में भी अपना विलय नहीं किया है, इसलिए जम्मू-कश्मीर पर हुए पाकिस्तानी हमले को भारत पर किया गया हमला कहना सचाई नहीं है ।"

३. नेशनल कान्फ्रेंस और कांग्रेस (इं) के नेतागण भी इस धारा के संबंध में जनता के सामने जो बातें कहते आये हैं, वे और भी दुर्भाग्यपूर्ण हैं। वे जम्मू-कश्मीर के २/५ भाग पर पाकिस्तान के कब्जे का उल्लेख कर यह जताते हैं कि इसके रहते यह नहीं कहा जा सकता है कि कश्मीर संबंधी भारत-पाक विवाद समाप्त हो गया है और इसीलिए यह कहना भी यथार्थ नहीं होगा कि राज्य का भारत में अन्तिम रूप में वास्तविक विलय हो चुका है। ऐसी स्थिति में यदि धारा ३७० को हटा दिया गया तो पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध प्रचार करने का खुला अवसर मिल जायेगा कि भारत अपना संविधान व शासन कश्मीरी जनता पर जबरदस्ती लाद रहा है। इस तर्क का और कुछ परिणाम हो न हो, कश्मीरी जनता के मन में राज्य के विलय के बारे में अनिश्चितता तो निर्मित हुई ही, और फिर नाना प्रकार के राष्ट्र-विरोधी विचार पनपने लगे। पाक-समर्थक तत्त्व उनको हवा देते हुए, भारत के विरुद्ध मजहबी घृणा और दुराव का भाव भड़काते आये हैं, जिसका परिणाम यह है कि घाटी के मुसलमानों ने भारत व हिन्दू समाज के विरुद्ध हथियार उठा लिये हैं। पूरी घाटी हिंसा, लूटमार, आगजनी और पृथक्तावाद की भीषण अग्नि में धू-धू कर जल रही है। हिन्दू अपने ही देश हिन्दुस्थान में विदेशी घोषित कर दिया गया है और अमरनाथ, खीरभवानी तथा मटन जैसे अपने तीर्थों को छोड़ देने के लिए विवश किया जा रहा है।

४. इस धारा के कारण भड़का पृथक्तावाद केवल जम्मू-कश्मीर को ही नहीं, अपितु पंजाब, तमिलनाडु, असम व पूर्वोत्तर राज्यों को भी प्रभावित कर रहा है। वहाँ भी भारतीय संसद् और संविधान के प्रभाव से मुक्त होने की आवाजें उठने लगी हैं और भारतीय गणराज्य की एकता व शक्ति को क्षरित कर रही हैं। नागालैंड व मिजोरम राज्य को इस दिशा में कुछ सफलता भी मिल चुकी है।

५. भारतीय संविधान की अनेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धाराएँ व व्यवस्थाएँ इसी धारा ३७० के कारण जम्मू-कश्मीर में आज तक प्रभावी नहीं हो सकीं। उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :–

(क) भारतीय संविधान देश के सभी नागरिकों के लिए दस मौलिक कर्तव्यों का निर्देश करता है, जिसके अनुसार राष्ट्र-ध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रीय मानबिन्दुओं का समादर करना अनिवार्य माना गया है। किन्तु धारा ३७०

के कारण यह व्यवस्था अब तक भी जम्मू-कश्मीर में लागू नहीं हो सकी है। उसी का परिणाम है कि राष्ट्र-ध्वज तिरंगे झंडे को जलाना, फाड़ना और अपमानित करना वहाँ दण्डनीय अपराध नहीं है, जैसा कि भारत के शेष राज्यों में है। १९८९ में श्री अटल विहारी वाजपेयी के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए तत्कालीन गृह-राज्यमंत्री पी. चिदम्बरम् ने इसकी पुष्टि की थी।

(ख) भारतीय संविधान का अनुच्छेद २५३ अन्तरराष्ट्रीय समझौतों व संधियों को पूरे देश में प्रभावी बनाने हेतु कानून बनाने की शक्ति भारतीय संसद् को प्रदान करता है। उस कानून से यदि किसी राज्य सरकार पर विपरीत प्रभाव पड़ता हो, तो भी वह उस पर आपत्ति नहीं कर सकती—अर्थात् प्रादेशिक हित व अधिकार की अपेक्षा राष्ट्र के हितों को वरीयता देने की व्यवस्था उस अनुच्छेद द्वारा बनायी गयी है। किन्तु संविधान का यह अत्यन्त आवश्यक अनुच्छेद धारा ३७० के कारण जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं किया जा सका है, जिसका तात्पर्य यह है कि ऐसी स्थिति आ सकती है कि जब राष्ट्र के व्यापक हित में की गयी किसी अन्तरराष्ट्रीय संधि को जम्मू-कश्मीर में लागू न किया जा सके।

(ग) भारतीय संविधान ने भारतीय संसद् को यह अधिकार दिया है कि वह राष्ट्र की आवश्यकता को देखते हुए किसी भी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है और आवश्यकतानुसार किसी भी राज्य को भारतीय संघ के एक या अनेक राज्यों में मिला सकती है। स्मणीय है कि सन् १९५६ में भारतीय संसद् ने इसी अधिकार से हैदराबाद राज्य को उसके पड़ोसी राज्यों में मिलाया था। किन्तु भारतीय संसद् इसी धारा ३७० के कारण, जम्मू-कश्मीर राज्य को आज तक हाथ नहीं लगा सकी, यद्यपि राज्य की जनता और राष्ट्र-हित दोनों की माँग रही है कि राज्य का पुनर्गठन हो।

(घ) अस्सी के दशक में जम्मू-कश्मीर राज्य द्वारा नियुक्त वजीर कमीशन ने यह अभिमत दिया था कि कश्मीर घाटी और जम्मू क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात को देखते हुए यदि कश्मीर घाटी में विधान-सभा की ४२ सीटें

हैं तो जम्मू क्षेत्र में ३६ सीटें होनी चाहिए, जबकि वहाँ मात्र २६ सीटें हैं। इसी प्रकार उसका कहना था कि लद्दाख की भौगोलिक स्थिति और जलवायु को देखते हुए, वहाँ दो सीटों का प्रावधान बहुत कम है, उसको बढ़ाना चाहिए। किन्तु इसी धारा ३७० के कारण चुनाव आयोग वजीर कमीशन की उस सिफारिश को क्रियान्वित नहीं कर सका और न ही भारत सरकार उस संबंध में कुछ कर पा रही है। वहाँ के राजनीतिक नेतृत्व की पक्षपाती व साम्प्रदायिक नीतियों के विरुद्ध जम्मू व लद्दाख की गुहार सुनने वाला कोई नहीं है।

६. राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त राज्यपाल जम्मू-कश्मीर का सांविधानिक मुखिया होने के बाद भी जम्मू-कश्मीर की नागरिकता न रखने और वहाँ मतदान के अधिकार से वंचित रहने के कारण बाहरी व्यक्ति समझा जाता है। इसका लाभ उठाते हुए घाटी में पाक-एजेण्ट भोले-भाले लोगों को समझाने में सफल हो जाते हैं कि राज्यपाल एक बाहरी व्यक्ति है, इसलिए उसका शासन हमारी गुलामी का सूचक है।

७. जम्मू-कश्मीर राज्य की प्रशासनिक व लोकतंत्री व्यवस्था में इसी प्रकार की एक और दुर्भाग्यपूर्ण विसंगति १९४७ से चली आ रही है, उसको भी इसी धारा ३७० के कारण आज तक सुधारा नहीं जा सका है। देश-विभाजन के पश्चात् करोड़ों भारतीय पाकिस्तान कहे जाने वाले क्षेत्र को छोड़कर, बचे भारत के किसी भी राज्य में जाकर बसे। उन्हें वहाँ के पुराने रहने वालों के समान सभी नागरिक अधिकार व सुविधाएँ दी गयीं। मनपसंद कामकाज करने से लेकर अचल सम्पत्ति खरीदने व बनाने, नौकरी करने, बच्चों को उपयोगी शिक्षा दिलाने तथा देश की लोकतंत्री प्रक्रिया में अर्थात् चुनाव में भाग लेने आदि के पूरे अधिकार समान रूप से दिये गये। वे स्थानीय निकाय, विधान-सभा, संसद् तथा अन्य प्रतिनिधि-संस्थाओं के चुनावों में सब के समान भाग ले सके। यह सब बिल्कुल स्वाभाविक रूप से पूरे देश में हुआ। एक राज्य को छोड़कर अन्य किसी राज्य की जनता ने नवागंतुकों की भाषा, पूजा-पद्धति या रहन-सहन के आधार पर उनके प्रति दुराव नहीं बरता और राष्ट्रीय एकात्मता का पूरा परिचय दिया। उस एक राज्य का नाम है – जम्मू-कश्मीर। उसके राजनीतिक

नेतृत्व ने अपनी साम्प्रदायिक व पृथक्तावादी मनोरचना का परिचय दिया और राज्य में रहने वालों को दो श्रेणियों में बाँटा। वहाँ के पुराने रहने वालों को 'रियासती' नागरिक कहा गया और बाद में आने वालों को 'बाहरी'। दोनों के अधिकारों में भी अन्तर किया गया। रियासती नागरिकों को सरकारी नौकरी पाने, अचल सम्पत्ति खरीदने और बनाने, मनपसंद शिक्षा-संस्थाओं में बच्चों को पढ़ाने और सभी प्रकार की प्रतिनिधि-संस्थाओं के चुनावों में भाग लेने का अधिकार दिया गया है, किन्तु दूसरी श्रेणी के नागरिक, भले ही वे राज्य में चार दशक से अधिक समय से रह रहे हों, इन अधिकारों से वंचित रखे गये हैं। यह कैसी विडम्बना है कि ये नागरिक, जिनकी संख्या एक लाख से ऊपर आँकी जाती है, भारत के नागरिक तो माने जाते हैं, किन्तु भारत के ही राज्य जम्मू-कश्मीर के नहीं। उन्हें लोकसभा के चुनाव में मतदान करने का अधिकार मिलता है, किन्तु जम्मू-कश्मीर विधान-सभा के चुनाव में नहीं। उनसे राज्य का टैक्स तो लिया जाता है, किन्तु उनको राज्य की नौकरी में प्रवेश नहीं दिया जाता और न ही राज्य में अचल सम्पत्ति बनाने या उद्योग स्थापित करने की अनुमति दी जाती है। भारत का चुनाव आयोग और सर्वोच्च न्यायालय उनको न्याय दिलाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। यह धारा ३७० की ही माया है कि वहाँ राजनीतिक नेतृत्व उनके मौलिक व लोकतांत्रिक अधिकारों को हड़पे बैठा है।

इसी धारा की आड़ में लद्दाख व जम्मू क्षेत्र के 'रियासती' नागरिकों (बौद्धों व अन्य हिन्दुओं) को उनके पुराने चले आ रहे अधिकारों से व्यवहारतः वंचित कर दिया गया है। उनको कश्मीर घाटी में अचल सम्पत्ति बनाने या खरीदने की सामान्यतः अनुमति नहीं दी जाती है। ६ दिसम्बर १९६८ को वरिष्ठ राजनेता श्री अटल विहारी वाजपेयी ने जम्मू-निवासी डॉ. जे. आर. सेठी के मामले को संसद् में उठाते हुए जब यह आरोप लगाया कि जम्मू-निवासियों के साथ कश्मीर घाटी में भेदभाव बरता जा रहा है, तो भारत सरकार को उसका कोई उत्तर देते नहीं बना। जम्मू-कश्मीर राज्य के नागरिक भारत के किसी भी भाग में जाकर बस सकते हैं, अचल सम्पत्ति बना व खरीद सकते हैं, उस क्षेत्र के अन्य नागरिकों के समान सभी मौलिक व लोकतांत्रिक अधिकारों का

उपयोग कर सकते हैं, क्योंकि वे भारत के नागरिक हैं, किन्तु यदि देश के अन्य भागों के नागरिक जम्मू-कश्मीर में बसना चाहें, तो वहाँ वे 'बाहरी' माने जाते हैं और उनको सामान्य नागरिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है। इसका यही तो अभिप्राय हुआ कि भारत का समान नागरिकता और अधिकारों का सिद्धान्त जम्मू-कश्मीर राज्य में प्रवेश करते ही निष्प्रभाव हो जाता है। भारतीय सीमाओं की रक्षा और आन्तरिक सुरक्षा-व्यवस्था के लिए भारत सरकार ने राज्य में अनेक छावनियाँ बनायी हैं, जहाँ भारत के विभिन्न प्रान्तों से आये हुए अधिकारी व सैनिक रहते हैं। उनमें से हजारों ऐसे हैं, जो वर्षों से अपने परिवार-जनों के साथ जम्मू-कश्मीर राज्य में रह रहे हैं। उनकी सेवा और निष्ठा राज्य व राष्ट्र के लिए गौरव का विषय है। उसी प्रकार राज्य की आर्थिक व औद्योगिक उन्नति के लिए अनेक सरकारी प्रतिष्ठान व परियोजनाएँ राज्य में चलायी जा रही हैं। उनमें भी भारत के कोने-कोने से आये हुए लोग अधिकारी व कर्मचारी के नाते कार्य कर रहे हैं और अनेक वर्षों से परिवार-जनों के साथ राज्य में ही रह रहे हैं। यही स्थिति भारत सरकार व राज्य सरकार द्वारा स्थापित प्रशासनिक कार्यालयों और बैंकों व वित्तीय संस्थानों की है, जिनमें भारत के कोने-कोने से लोग आकर काम कर रहे हैं। अनुमान है कि ऐसे निष्ठावान् भारतीय नागरिकों की संख्या ८ लाख के लगभग है। यह कैसी विडम्बना है कि जो राज्य उनकी सेवाओं व सहयोग से आज तक सुरक्षित रह सका है और आर्थिक दृष्टि से देश के अनेक राज्यों से आगे पहुँच सका है, वही उनको अचल सम्पत्ति बनाने-खरीदने, अपने बच्चों को इंजीनियरिंग व आयुर्वेदिक कालेजों में पढ़ाने जैसे सामान्य नागरिक अधिकारों से भी वंचित रख रहा है। उनको राज्य विधान-सभा व स्थानीय निकायों के चुनावों की मतदाता-सूची में भी सम्मिलित नहीं किया गया है, भले ही वे वहाँ ३-४ दशकों से रहते आ रहे हैं। न जाने कितने प्राध्यापक, मेडिकल कालेज के डाक्टर, प्रोफेसर, न्यायालय के माननीय न्यायाधीश और अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बद्ध अधिकारी इन अधिकारों से वंचित हैं। धारा ३७० की वकालत करने वालों को इस अन्यायपूर्ण स्थिति पर विचार करना होगा। भारतीय संविधान की धारा ३७० की महिमा ही ऐसी है।

. केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच कार्य-विभाजन हेतु भारतीय संविधान ने संघ-सूची, राज्य-सूची और समवर्ती सूची का प्रावधान किया है। उसी के साथ संविधान की धारा २४९ द्वारा यह व्यवस्था भी की गयी है कि यदि राज्य-सूची में अंकित कोई विषय किसी परिस्थिति में राष्ट्रीय महत्त्व का हो जाये, तो उसके बारे में नियम बनाने की शक्ति भारतीय संसद् में निहित होगी। तीनों सूचियों में अंकित विषयों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हैं, उन पर भी कानून बनाने की शक्ति संसद् को दी गयी है। किन्तु धारा ३७० के कारण भारत की संसद् अपनी इन दोनों शक्तियों का प्रयोग जम्मू-कश्मीर राज्य के संदर्भ में नहीं कर सकती है।

०. विदेशी आक्रमण अथवा आन्तरिक सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में यदि राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद ३५२ के अन्तर्गत आपात स्थिति की घोषणा करें, तो वह शेष पूरे भारत पर लागू हो जायेगी, किन्तु जम्मू-कश्मीर पर नहीं। महामहिम राष्ट्रपति के आदेश को, जम्मू-कश्मीर राज्य चाहे तो अस्वीकार कर दे। इसी प्रकार भारतीय संविधान का अनुच्छेद ३५० राष्ट्रपति को जम्मू-कश्मीर को छोड़कर पूरे देश में या उसके किसी विशिष्ट भाग में वित्तीय संकट की उद्घोषणा करने का अधिकार देता है। जम्मू-कश्मीर राज्य उनके अधिकार-क्षेत्र से उसी धारा ३७० की आड़ में अलग रख दिया गया।

उपर्युक्त विवरण को देखते हुए संविधान की धारा ३७० का प्रभाव संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत के राष्ट्रपति के आदेश और भारतीय संसद् के संकल्प जम्मू-कश्मीर के लिए अर्थहीन रहेंगे यदि वहाँ की विधान-सभा उनको अस्वीकार कर दे, अर्थात् जम्मू-कश्मीर भारत का अंग रहते हुए भी मानो अंग नहीं है। ऐसी सांविधानिक बाधा देश की स्वतन्त्रता और अखण्डता के लिए कितना बड़ा संकट है, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं।

भारत व जम्मू-कश्मीर के सम्बन्ध पर इसका यह प्रभाव हुआ कि वह राज्य भारत का अभिन्न अंग नहीं बन सका। क्षेत्रीय तथा साम्प्रदायिक पृथकूतावाद की गीत हुई और देश की भावनात्मक एकता को संविधान के आंगन में ही घायल कर दिया गया। उसके पुनः स्वस्थ होकर उठ खड़े होने के लिए हमें राष्ट्रीय अखंडता की संजीवनी लानी होगी जिसके प्रयोग से जम्मू-कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत पुनः अपने स्वाभाविक रूप में राष्ट्र-पुरुष के नाते खड़ा हो सके।

निरस्त करने के उपाय

ऐसा प्रचार किया जाता है कि धारा ३७० को समाप्त करने के मार्ग में अनेक सांविधानिक बाधाएँ हैं। इसमें सबसे बड़ी बाधा यह बतायी जाती है कि जम्मू-कश्मीर राज्य अर्थात् उसकी विधान-सभा की स्वीकृति के बिना यह संभव नहीं है, जिसे प्राप्त करना वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में संभव नहीं है। तो क्या इस बाधा का कोई उपचार नहीं है ?

पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रणजीतसिंह नरूला ने लिखा है कि "अगर मैं आज प्रधानमंत्री होता तो निश्चय ही धारा ३७० खत्म करने का कदम उठाता। मेरी राय यह है कि राज्यपाल-शासन के दौरान भी धारा ३७० को खत्म किया जा सकता है। कुछ ऐसी कानूनी प्रक्रियाएँ हैं जो हमें यह रास्ता बताती हैं।"

अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विधिवेत्ता डॉ. बाबूराम चौहान ने भी अपने निबन्ध 'कश्मीर प्रॉब्लम इन कान्स्टीट्यूशनल एण्ड इंटरनेशनल ला' में विधिसम्मत और प्रभावी ढंग से प्रतिपादित किया है कि इस घातक धारा को हटाने में जो सांविधानिक बाधाएँ बतायी जाती हैं, वे असाध्य नहीं हैं। यदि राष्ट्रीय नेतृत्व में आवश्यक इच्छाशक्ति हो, तो उस धारा को सदा-सर्वदा के लिए हटाया जा सकता है और इस राज्य सहित पूरे देश को संकट में डूबने से बचाया जा सकता है।

संसद् में गूँज

स्मरणीय है कि १९६४ में जब निर्दलीय सदस्य प्रकाशवीर शास्त्री ने धारा ३७० की समाप्ति से संबंधित एक विधेयक लोकसभा में पेश किया था, तो शास्त्रीजी के इस विधेयक का समर्थन एस. एम. बनर्जी तथा सरयू पाण्डेय जैसे कम्युनिस्ट नेताओं द्वारा भी किया गया था। डॉ. राममनोहर लोहिया और मधु लिमये ने तो इस विधेयक के पक्ष में अपने मत भी दिये थे। उसके बाद ३० अगस्त १९६८ को श्री अटल विहारी वाजपेयी ने धारा ३७० को समाप्त करने से संबंधित निम्नांकित संकल्प लोकसभा में प्रस्तुत किया था :

"इस सभा की राय है कि जम्मू-कश्मीर राज्य की वर्तमान असंगत स्थिति का अन्त किया जाना चाहिए, जिसमें यह राज्य भारत का अभिन्न अंग होते हुए भी इसका अलग संविधान है, अलग राज्याध्यक्ष है और अलग झण्डा है, और इस राज्य को

पूर्ण रूप से भारत के अन्य राज्यों के समान लाया जाना चाहिए और इस प्रयोजनार्थ यह सभा सिफारिश करती है कि सभी आवश्यक कार्यवाहियाँ, जैसे कि अनुच्छेद ३७० का निराकरण, तुरन्त आरंभ की जायें।"

इस प्रस्ताव पर दो दिन तक बहस चली जिसमें लगभग सभी राजनीतिक दलों के सांसदों ने भाग लिया। श्री अटल विहारी वाजपेयी ने अपने प्रस्ताव पर आरम्भ हुई परिचर्चा में बोलते हुए बताया था कि स्व. पं. जवाहर लाल नेहरू, भूतपूर्व विदेश मंत्री श्री चागला, जम्मू-कश्मीर के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री बख्शी गुलाम मुहम्मद और श्री सादिक जैसे नेताओं ने भी इस धारा को अस्थायी बताया था और देश को आश्वस्त किया था कि इसको शीघ्र समाप्त किया जायेगा।

'वोट'-लोभी राजनीति की विडम्बना !

यह कैसी विचित्र स्थिति है कि जिस धारा की शीघ्र समाप्ति के औचित्य व आवश्यकता को इतने बड़े लोगों ने असंदिग्ध शब्दों में स्वीकारा, आज उसी धारा को टिकाये रखने की उद्घोषणाएँ एक के बाद दूसरे प्रधानमंत्री—श्रीमती इन्दिरा गांधी से लेकर राजीव गांधी व विश्वनाथ प्रताप सिंह तक सभी – करते सुने गये हैं। भारतीय जनता पार्टी को छोड़कर देश के सभी बड़े-छोटे राजनीतिक दल इस धारा को टिकाये रखने की ही बात करते हैं। कैसी बिडम्बना है कि पृथक्तावादी धारा को 'देश की आवश्यकता' और 'जोड़ने वाली' बताते हैं। कुर्सी की राजनीति की संभवतः माया ही ऐसी होती है कि "शत्रु" को 'मित्र' कहा जाता है ! राज्यपाल जगमोहन ने, अपने पहले शासन-काल में ही, इस धारा की आड़ में खेले जा रहे राष्ट्रघातियों के खेल को भाँप लिया था और तत्कालीन प्रधानमंत्री को अपनी रिपोर्ट में सावधान करते हुए कहा था कि इसके पूर्व कि स्थिति नियंत्रण के बाहर हो जाये, इस राष्ट्रघाती धारा को समाप्त करने हेतु आवश्यक पग उठाये जायें। किन्तु 'वोटों' की राजनीति ने सबको ही अंधा-बहरा जैसा बना दिया है !

शेख के पश्चात्....

सुज्जद अन्तराल

९ अगस्त १९५३ को शेख अब्दुल्ला की बर्खास्तगी के बाद बख्शी गुलाम मुहम्मद ने राज्य का नेतृत्व संभाला। उनके कार्यकाल के दौरान २६ जनवरी १९५६ को जम्मू-कश्मीर की संविधान-सभा ने राज्य का संविधान स्वीकृत किया और राज्य के भारतीय संघ में अन्तिम विलय की एक बार फिर पुष्टि की। राज्य के संविधान की धारा ३ और ५ में राज्य का भारतीय संघ में विलय न केवल अंतिम व पूर्ण घोषित किया गया, बल्कि यह भी संकल्प व्यक्त किया गया कि अब विलय के संबंध में भविष्य में भी शंका या प्रश्न नहीं उठाया जा सकेगा। अगले दिन से यह संविधान लागू होने के साथ-साथ संविधान-सभा विसर्जित कर दी गयी। संविधान-सभा के संकल्प के अनुसार भारत से जम्मू-कश्मीर में जाने के लिए परमिट प्रणाली सदा के लिए समाप्त कर दी गयी। भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक का कार्यक्षेत्र जम्मू-कश्मीर तक विस्तृत कर दिया गया। देश के सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार भी राज्य पर लागू हो गया।

बख्शी गुलाम मोहम्मद के बाद कुछ समय के लिए शमसुद्दीन ने राज्य-प्रशासन की बागडोर संभाली। लेकिन शीघ्र ही उन्हें ख्वाजा गुलाम मोहम्मद सादिक के लिए मार्ग साफ करना पड़ा। सादिक ने नेशनल कान्फ्रेंस का विलय इंडियन नेशनल कांग्रेस में कर दिया। उल्लेखनीय है कि प्रजा परिषद् अपना विलय भारतीय जनसंघ में उससे पूर्व कर चुकी थी। सादिक के शासन-काल में जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री पद को देश के अन्य राज्यों की भाँति ही मुख्यमंत्री पद में बदल दिया गया। राज्य के सांविधानिक मुखिया 'सदरे-रियासत' के निर्वाचित पद को समाप्त करके भारतीय संघ के अन्य राज्यों की भाँति जम्मू-कश्मीर में भी भारत के राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति का क्रम आरंभ हो गया। इन सभी राजनीतिक पगों के उठाये जाने से जन-साधारण में यह विश्वास उत्पन्न होने लगा कि श्री नेहरू के कथनानुसार भारतीय संविधान की धारा ३७० धीरे-धीरे घिसते हुए स्वयं समाप्त हो जायेगी।

शेख की वापसी – वेताल फिर डाल पर

सादिक की मृत्यु के बाद कांग्रेस के नेता मीर कासिम जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री बने। किन्तु राज्य की राजनीति पर न तो उनकी कोई पकड़ थी और न ही उनका कोई राजनीतिक आधार था। इस बीच शेख अब्दुल्ला को मुक्त कर दिया गया था। यद्यपि उसने पहले की भाँति ही अलगाववादी नीतियों के आधार पर अपनी राजनीतिक साख फिर से जमाने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उसको देश या विदेश कहीं से भी समर्थन प्राप्त नहीं हो सका। तब उसने तत्कालीन भारतीय प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया। इन्दिरा की ओर से अनुकूल प्रतिक्रिया होने पर दोनों के बीच राजनीतिक समझौता हुआ। फलस्वरूप मीर कासिम ने शेख के लिए मुख्यमन्त्री की कुर्सी खाली कर दी। शेख ने अपने जनमत संग्रह मोर्चे को भंगकर भारत के प्रति निष्ठा की शपथ ली और इन्दिरा गांधी ने शेख को नेशनल कान्फ्रेंस को पुनर्जीवित करने की छूट दे दी। अवसर से लाभ उठाने के लिए उसने गिरगिट के समान, मात्र अपना रंग बदला था। वह फिर सत्ता में आया और अपना पुराना खेल फिर प्रारम्भ किया, यद्यपि इस बार अधिक चतुराई व सावधानी के साथ। वह अपने पग धीरे-धीरे आगे बढ़ा रहा था। किन्तु विधाता ने उसे अपने अरमान पूरे करने के लिए यथेष्ट समय नहीं दिया और १९८२ में उसकी मृत्यु हो गयी।

शेख के द्वारा जनमत संग्रह मोर्चा भंग कर नेशनल कांफ्रेंस को पुनर्जीवित किये जाने की घटना को देशवासियों की आँख में धूल झोंकने की संज्ञा देते हुए जम्मू-कश्मीर राज्य के सेवानिवृत्त वरिष्ठ पुलिस अधिकारी सप्रमाण बताते हैं कि केवल संस्था का नामपट्ट बदला गया था। नेशनल कान्फ्रेंस के मुखौटे के पीछे जनमत संग्रह मोर्चे का संगठन कार्य करने लगा – न उसकी विचारधारा बदली और न ही उसके व्यक्ति। यह अवश्य हुआ कि अवसर का लाभ उठाते हुए अनेक कुख्यात पाकपरस्त लोग उसमें घुस आये और देश को छला गया। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अवश्य अपनी तथाकथित सफलता पर अपनी पीठ थपथपायी होगी, किन्तु वह उनका भ्रम ही था।

विस्मयकारी रहस्य

सन् १९५८ से १९६४ के कालखण्ड में शेख-समर्थक तत्त्वों की गतिविधियों के सम्बन्ध में अवकाश प्राप्त आई. बी. निदेशक श्री मलिक ने सनसनीजनक

जानकारियाँ देशवासियों को अपनी पुस्तक 'माई इअर्स विद नेहरू' के माध्यम से दी हैं। वे इस प्रकार हैं : शेख और उनके परिवारजनों का पाकिस्तान के उच्च अधिकारियों से न केवल छद्म नामों से पत्राचार होता था, अपितु बड़े पैमाने पर उनको वहाँ से धन भी प्राप्त होता था। शेख अब्दुल्ला के लिए अजीम, बेगम अब्दुल्ला के लिए हमशीरा साहिबा और अफजल बेग के लिए अतीक नाम रखे गये थे। पाक गुप्तचर सेवा के नियाजी नामक अधिकारी द्वारा शेख के पास ३५ हजार रुपये एक ही बार में हमशीरा साहिबा के माध्यम से भेजने की जानकारी मिलती है। पाकिस्तान द्वारा इन लोगों के पास धन भेजे जाने का सिलसिला लगातार गुप्त पद्धति से जारी रहा। जब चीनी आक्रमण से पूरा देश मर्माहत था, तो यह परिवार खुले आम खुशियाँ मना रहा था। मलिक का तो यहाँ तक कहना है कि इस परिवार ने अपनी इस खुशी को कभी छिपाया नहीं और नेहरू तक से उसे प्रकट किया।

फारूख : बाप से बेटा सवाया

उसके बाद उसके उत्तराधिकारी एवं पुत्र फारूख अब्दुल्ला ने अपने पिता की राजनीतिक आकांक्षाओं को अर्थात् स्वतंत्र कश्मीर के सपने को साकार करने का बीड़ा उठाया। इसके पहले कि उसके उन कार्यकलापों का विवरण दिया जाये, उसके मुख्यमंत्री बनने से पूर्व के इतिहास को ध्यान में लेना अच्छा रहेगा।

राज्य का शासन-सूत्र संभालने से पूर्व वह लंदन में रहता था और वहाँ की ही नागरिकता ग्रहण की हुई थी। वहाँ रहते हुए वह जम्मू-कश्मीर मुक्ति मोर्चा (जे. के. एल.एफ.) से घनिष्ठ संबंध रखता था। इस संगठन के निमंत्रण पर उसने १९७४ में पाक-अधिकृत कश्मीर और पाकिस्तान की यात्रा की थी। उस यात्रा के दौरान फारूख ने जनमत-संग्रह मोर्चे के नेता अब्दुल खलीक अंसारी की प्रेरणा व प्रभाव से पाकिस्तान के प्रति निष्ठावान् रहने की शपथ ग्रहण की थी और जे. के. एल. एफ. के हाशिम कुरेशी, मकबूल बट्ट और अमानुल्ला खाँ जैसे नेताओं के साथ अनेक बार गुप्त मंत्रणाएँ भी की थीं। जे. के. एल. एफ. के साथ वह इस सीमा तक जुड़ गया था कि पाक-अधिकृत जम्मू-कश्मीर की यात्रा के दौरान उसने अमानुल्ला जैसे कुख्यात व्यक्ति को संगठन की शपथ एक समारोह में दिलायी थी। पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमन्त्री भुट्टो और पाकिस्तानी नेता सिकन्दर हयात खाँ और खलीक अहमद के साथ, जो उन दिनों पाक-अधिकृत जम्मू-कश्मीर के प्रशासक थे, अनेक बार उसकी गुप्त मंत्रणाएँ हुई थीं। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहना पड़ता है कि जैसे

नेहरू जी ने शेख के वास्तविक चरित्र को समझे बिना उसको राज्य की बागडोर देने की भयंकर भूल की थी, वैसी ही भूल उनकी पुत्री और तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सन् १९८२ में की और फारूख जैसे व्यक्ति को उसके पिता के स्थान पर गद्दी पर बैठाया। उसने सत्ता संभालते ही घाटी के पृथक्तावादी नेता आवामी ऐक्शन कमेटी के चेयनमैन मीरवायज मौलवी मोहम्मद फारूख के साथ अपनी घनिष्ठता स्थापित की और साथ ही साथ उस समय के राज्य कांग्रेस(इं) के अध्यक्ष और आज के गृहमंत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद तथा कांग्रेस(इं) के तत्कालीन उपाध्यक्ष गुलाम रसूल कार जैसे लोगों से भी गहरे रिश्ते स्थापित कर लिये। उल्लेखनीय है कि इसी गुलाम रसूल कार का लड़का पिछले दिनों राष्ट्रद्रोही कार्यवाहियों के कारण बंदी बनाया गया है। इन कांग्रेसी नेताओं से बनाये गये संबंधों ने जहाँ डॉ. फारूख के वास्तविक इरादों पर पर्दा डाले रखा, वहीं घाटी के पृथक्तावादी तत्त्वों को एक नये मुखौटे के पीछे संगठित होने का अवसर दिया। कश्मीर घाटी में पाक-परस्त तत्त्वों को बढ़ावा देने के लिए १९८२ में उसने विधानसभा में एक विधेयक पारित कराया जिसका उद्देश्य था १९४७ में या उसके बाद पाकिस्तान चले गये मुसलमानों को वापस बुलाकर उनका विधिवत् पुनर्वास कराना। किन्तु तत्कालीन राज्यपाल जगमोहन ने फारूख के गर्हित उद्देश्य को समय रहते भाँप लिया और उस विधेयक को अपनी सहमति नहीं दी।

पंजाब और कश्मीर के आतंकवादियों की सहायता

केवल कश्मीर के ही नहीं, पंजाब के पृथक्तावादियों और उग्रवादियों को भी उसने अपने शासन-काल में पूरा सहयोग दिया। उसके सहयोग से भिंडरावाला ने जम्मू-कश्मीर में उग्रवादियों के ६ प्रशिक्षण-केन्द्र चलाये। जून ८४ में हुए 'ब्लू स्टार आपरेशन' से पूर्व फारूख अब्दुल्ला ने स्वयं भिंडरावाले से भेंट की थी।

शासन में आने के बाद उसने कुख्यात जे. के. मुक्ति मोर्चे के लोगों को खुली सुविधाएँ देना आरम्भ कर दिया। पाकिस्तानी घुसपैठिये जम्मू-कश्मीर की पुलिस तथा अर्द्ध-सैनिक बलों में उसके संरक्षण में बड़ी संख्या में भरती हुए। १९८३ में श्रीनगर के बख्शी स्टेडियम में जब पाकिस्तानी झंडे फहराये गये, तब फारूख ने अपराधियों पर कड़ाई करना तो दूर रहा, जो कुछ पकड़े गये थे उन्हें भी छोड़ दिया। फारूख के शासनारूढ़ होने से पहले राज्य की पुलिस ने जिन सैकड़ों पाकिस्तानी नागरिकों और पाक-समर्थक कश्मीरियों को विभिन्न सुरक्षा कानूनों के अन्तर्गत बन्दी

बनाया था, उनमें से अधिकांश को फारूख ने रिहा कर दिया। छोड़े गये इन लोगों में वे २०० कश्मीरी आतंकवादी भी शामिल थे जो पाकिस्तान से शस्त्रास्त्रों का प्रशिक्षण प्राप्त कर घाटी में घुस आये थे।

बम फूटते रहे, अपराधी छूटते रहे, रेकार्ड टूटते रहे

फारूख के शासन संभालने के बाद पाक-समर्थकों द्वारा घाटी में बम-धमाकों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ जो लगातार बढ़ता गया। १९८२ में दो, १९८३ में पन्द्रह, १९८४ में सत्ताईस, १९८५ में बयालीस, १९८६ में साठ, १९८७ में सत्तर, १९८८ में उन्नासी और १९८९ में तीन सौ बम-धमाके हुए। जब गुप्तचर विभाग द्वारा फारूख अब्दुल्ला को १९८६ में घाटी के गुलाम आजाद नामक आतंकवादी द्वारा मुस्लिम मुक्ति मोर्चे के गठन व कश्मीरी युवकों को शस्त्रास्त्र-प्रशिक्षण के लिए पाकिस्तान भेजे जाने और पाकिस्तान स्थित खूँखार आतंकवादियों के साथ उनके घनिष्ठ संबंधों की जानकारी दी गयी तो फारूख ने उसे मानने से इन्कार कर दिया।

फारूख के शासन-काल में आतंकवादियों को जो छूट मिली थी, वह उसके बीहनोई जी. एम. शाह के शासनकाल में भी जारी रही। राज्य में उग्रवादी पृथक्तावाद तेजी से बढ़ता गया। डॉ. फारूख ने सन् १९८९ के आरंभ में २३ खूँखार कश्मीरी आतंकवादियों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने के नाम पर मुक्त कर दिया। उसके पश्चात् जुलाई-दिसम्बर के बीच २०० पाक-प्रशिक्षित कश्मीरी आतंकवादियों को भी, जिन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था, छोड़ दिया गया। ऐसे ७० कट्टर आतंकवादियों को, जिनकी नजरबंदी को जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में बनायी गयी समिति ने उचित घोषित किया था, फारूख द्वारा मुक्त कर दिया गया। इनमें मोहम्मद अफजल शेख, रफीक अहमद एहंगर, मुहम्मद अयूब नाजर, फारूख अहमद गनई, गुलाम मुहम्मद गुजरी, फारूख अहमद मलिक, नजीर अहमद शेख, गुलाम मोहिउद्दीन तेली, रियाज़ अहमद लोन और फारूख अहमद ठाकुर जैसे वे कुख्यात आतंकवादी भी शामिल थे, जिन्होंने आगजनी, बम-विस्फोटों, हत्याओं आदि के अनेक दुष्कृत्य किये थे। इनमें से कई तो पुलिस से मुठभेड़ करते हुए बन्दी बनाये गये थे और इन सभी आतंकवादियों के पास से भारी मात्रा में शस्त्रास्त्र बरामद हुए थे।

जब यह समाचार मिला कि केन्द्रीय गृहमंत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद की पुत्री डॉ. रूबिया सईद का अपहरण कर लिया गया है, तो उस के साथ यह भी सूचना मिली

कि घाटी के दुर्दान्त ४५ आतंकवादियों को फारूख अब्दुल्ला के प्रशासन ने छोड़ दिया है। ये सब ऐसे प्रसंग हैं जिनसे आतंकवादियों और पृथकूतावादियों का हौसला लगातार बढ़ता गया है और कश्मीर घाटी को भारत से दूर ले जाने वालों का दबदबा बनता गया है।

गुलशाह – करेला नीम चढ़ा

फारूख अब्दुल्ला के दो कार्यकालों के बीच में उसके बहिनोई गुलाम मुहम्मद शाह का शासन-काल भी आतंकवादियों एवं पाक-समर्थक तत्त्वों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। पाकिस्तान के प्रति उसकी सहानुभूति तो पहले से ही प्रकट थी, उसके १६ मास के शासन में प्रशासन-तंत्र पूरी तरह से पंगु बन गया था और हिंसा एवं तोड़फोड़ इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि उसके शासन के प्रारम्भिक ९० दिनों में से ७२ दिन श्रीनगर में कर्फ्यू रहा। उसने श्रीनगर सचिवालय के परिसर में मस्जिद बनवाकर अपनी धर्मान्धता का खुला परिचय दे दिया था। ये मस्जिदें पाक-परस्त सरकारी कर्मचारियों की राष्ट्र-घातक गतिविधियों का केन्द्र बन गयीं और राज्य के प्रशासन-तंत्र पर पाकिस्तानी तत्त्वों को हावी होने का अवसर मिल गया।

इन्दिरा कांग्रेस ने जिस गुलाम मुहम्मद शाह को जम्मू-कश्मीर का मुख्यमंत्री बनवाया, वह किसी भी प्रकार से शेख अथवा फारूख से कम खतरनाक नहीं सिद्ध हुआ। उसने मुख्यमंत्री का पद संभालने के बाद खुले आम घोषणाएँ कीं कि वह पहले मुसलमान है और फिर और कुछ। वह चालाक भी बहुत था। उसने जहाँ एक ओर जमाते इस्लामी जैसे कट्टरपंथी व पृथकूतावादी संगठनों को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर कांग्रसी नेताओं को लूट-खसोट करने और पैसा बटोरने की खुली छूट देकर उनका मुँह बंद रखा। उसी के शासन-काल में फरवरी १९८६ में कश्मीर घाटी में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थों व मन्दिरों पर व्यापक पैमाने पर हमले हुए। लगभग ४० मन्दिरों को तोड़ा गया या जलाया गया और घाटी के ग्रामीण क्षेत्रों में हिन्दू नारियों के शील-भंग की अनगिनत घटनाएँ हुईं। अनन्तनाग जिले में हिन्दुओं के मकानों व दुकानों को दिन-दहाड़े लूटा व जलाया गया। जब शाह से इन घटनाओं की चर्चा राज्य के पत्रकारों ने की, तो उसने यह कहकर उनका मजाक बनाने की चेष्टा की कि इतने बड़े राज्य में ४-५ मन्दिर, ४-५ मस्जिदें टूट या जल गयीं तो क्या आफत आ गयी, शेष भारत में भी तो यह होता रहता है। सन् १९८६ में जब उसके मंत्रिमंडल

को बर्खास्त किया गया, तो उसने राज्य की पुरानी मुस्लिम कान्फ्रेन्स को पुनर्जीवित किया और रियासत को इस्लामी राज्य बनाना अपना लक्ष्य घोषित किया।

पुनः फारूख — पुरानी चाल बेढंगी

७ नवम्बर १९८६ को दुबारा सत्ता में आने पर फारूख ने अपनी शैली में कोई सुधार नहीं किया। सच्चाई तो यह है कि फारूख अब्दुल्ला प्रशासन-तंत्र पर नियंत्रण करने में कभी सफल नहीं रहा। रंगीन-मिजाज फारूख के पास इसके लिए समय ही नहीं था। इसका अनुमान इस बात से हो सकता है कि जब १९८४ के जून अन्त और जुलाई प्रारंभ में उसका तख्ता पलटने की योजना दिल्ली व श्रीनगर में बन रही थी, तब वह प्रसिद्ध पत्रिका 'संडे मेल' के अनुसार, मोटर साइकिल पर एक प्रसिद्ध सिने अभिनेत्री ज़ीनत अमान के साथ सोपोर की सैर का आनंद उठा रहा था।

राज्यपाल की चेतावनी

स्वतन्त्रता के ४३ वर्षों में से ३ दशक से भी अधिक वर्ष जम्मू-कश्मीर राज्य पर शेख अब्दुल्ला, उसका लड़का फारूख अब्दुल्ला और दामाद गुलाम मुहम्मद शाह जैसे लोग मुख्यमंत्री रहे। अर्थात् एक ऐसे परिवार का शासन रहा जिसे भारत के साथ भावनात्मक लगाव दिखावे मात्र का ही था, उनकी राजनीति का केन्द्र-बिन्दु 'भारतीय कश्मीर' नहीं रहा। वे 'आज़ाद कश्मीर' या 'पाकिस्तानी कश्मीर' के ताने-बाने बुनते रहे। इस कारण कश्मीर में भारत की प्रभुसत्ता अपनी जड़ें सुदृढ़ नहीं कर सकी, उल्टे उसकी जड़ों को ये लोग योजनापूर्वक खोखला करते रहे। उसी का परिणाम था कि राज्यपाल जगमोहन ने अपने पहले शासनकाल में तत्कालीन राजीव सरकार को इस आशय का एक गोपनीय संदेश लिखा था कि राज्य में हालात तेजी से बिगड़ रहे हैं। सब कुछ लगभग बेकाबू हो गया है। सबसे अधिक चिन्ताजनक बात यह है कि सरकारी नीतियाँ आतंकवादियों के हौसले बढ़ा रही हैं और वे भारत सरकार के प्रतिनिधियों व प्रशासनिक अधिकारियों के विरुद्ध दुश्मनी साधने लगे हैं। उन्होंने भारत सरकार को यह भी स्पष्ट बता दिया था कि यद्यपि उन्होंने मुख्यमंत्री को स्थिति से अवगत करा दिया है, लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं होना है क्योंकि मुख्यमंत्री की कोई बिसात नहीं बची है। उनका राजनीतिक एवं प्रशासनिक दोनों ही प्रकार का प्रभाव समाप्त हो चुका है। वे केवल सांविधानिक खाना-पूर्ति हैं। हालात

की माँग है कि तुरन्त प्रभावी हस्तक्षेप किया जाये। राज्यपाल जगमोहन ने प्रधानमंत्री को यहाँ तक लिख दिया था कि समय बहुत कम है, कल तक हो सकता है कि बहुत देर हो जाये। किन्तु राज्यपाल द्वारा दी गयी इस गंभीरतम चेतावनी के संदर्भ में भारत सरकार द्वारा उस समय कुछ नहीं किया गया।

दूसरी बार जगमोहन

जम्मू-कश्मीर की स्थिति को हाथ से बाहर जाते देखकर भारत सरकार ने जगमोहन को, जो एक बार पहले जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल रह चुके थे, दुबारा राज्य का राज्यपाल नियुक्त किया। जगमोहन अपने पहले कार्यकाल में राज्य में बहुत लोकप्रिय हुए थे। उनकी प्रशासनिक क्षमता, सूझबूझ और न्यायप्रियता का सभी सिक्का मानते हैं, इसलिए कुछ राजनीतिक नेताओं को छोड़कर आम भारतवासी ने उनकी नियुक्ति का स्वागत किया। लेकिन उनका राज्य में पहुँचना उन लोगों की योजनाओं पर पानी फेरने वाला था जो जम्मू-कश्मीर को भारत से अलग करके पृथक् और स्वतंत्र राज्य बनाना चाहते थे या उसे पाकिस्तान में मिलाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उनकी नियुक्ति पर अपना कठोर विरोध प्रकट किया। फारूख अब्दुल्ला, जिसकी नस-नस से जगमोहन परिचित थे, बहुत घबराया और भागकर दिल्ली आया व राजीव गांधी से मिला। दिल्ली से वापस जम्मू पहुँचकर उसने मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। उसको और उसके समर्थकों को आशा रही होगी कि उसके त्यागपत्र से देश व राज्य में तहलका मच जायेगा और भारत सरकार को जगमोहन को वापस बुलाना पड़ेगा, किन्तु पाँसा उल्टा पड़ा। जगमोहन ने पूरी तत्परता से प्रशासन संभाल लिया। उनका दबदबा ऐसा था कि शासन-तंत्र में नया माहौल बनने लगा। भारत के प्रति निष्ठा रखने वालों के हौसले बुलंद हुए। जगमोहन को राजनीतिक परिस्थिति समझने में देरी नहीं लगी। वे जानते थे कि यदि देशघातियों को कुछ और समय मिला, तो वे उनके भी पैर नहीं जमने देंगे। जगमोहन राज्य के प्रायः सभी विधायकों को निजी-स्तर पर पहचानते थे और उनकी हानि पहुँचा सकने की क्षमता से भी भलीभाँति परिचित थे। अतः उन्होंने एक साहसिक कदम उठाने की ठान ली और अपने जम्मू पहुँचने के तुरन्त बाद राज्य की विधान-सभा भंग कर दी। संदिग्ध राजनेता देखते ही देखते धरती पर जा गिरे। पाकिस्तानी तत्त्वों के हौसले पस्त होने लगे। दिल्ली के राजनेताओं ने श्रीनगर जाकर उन लोगों की पीठ थपथपानी चाही, किन्तु श्रीनगर और घाटी के वातावरण ने उन्हें भी हिला दिया। राजनेताओं से छिपा नहीं रह सका कि घाटी में भारत का शासन सेना के आधार पर ही टिका

हुआ है। सामान्य जन भयभीत है। युवा भारत-विरोधी बन चुके हैं। प्रशासन पर पृथकूतावादी हावी हैं। जगमोहन की ही यह कुशलता और दृढ़ता थी कि उन्होंने हारी हुई बाजी को संभाल लिया था। पाकिस्तानी तत्त्व पकड़े जाने लगे थे। उनके घरों से बहुत बड़ी मात्रा में शस्त्रास्त्र बरामद होने लगे थे। धीरे-धीरे भारत के शासन का दबदबा फिर बनना आरम्भ हुआ था। जगमोहन ने बहुत तेजी के साथ पृथकूतावादी सरगनाओं को धर दबोचा। पाकिस्तानी जिहाद को आगे बढ़ाने वाले सम्पादकों व जमाते इस्लामी के नेताओं पर देखते-देखते हाथ रख दिया। पाकिस्तानी तत्त्वों ने भी अपने हमलों में तेजी लाने का प्रयास किया और स्थान-स्थान पर मुठभेड़ें प्रारंभ हो गयीं। जगमोहन ने शेर की माँद में घुसने का साहस दिखाया और पूरी घाटी में और विशेषकर श्रीनगर में घर-घर में तलाशी करवायी। इस अभियान में अनेक आतंकवादी नेता और शस्त्रास्त्रों के भंडार सेना के हाथ लगे, किन्तु पाकिस्तानी तत्त्वों का मोर्चा भी कमजोर नहीं था। उनके आतंक ने हिन्दुओं को घाटी छोड़ने के लिए विवश कर दिया। अपहरण की घटनाएँ आये दिन हो रही थीं। डॉ. फारूख और उसके बहिनोई गुलाम मुहम्मद शाह का बोया हुआ विष सामने आ गया था। किन्तु सेना व सुरक्षा-बलों ने बड़े साहस व सूझ-बूझ के साथ मैदान जीतना प्रारम्भ कर दिया था। राज्य के वातावरण में परिवर्तन आने लगा था, किन्तु भारत सरकार के कश्मीर के प्रभारी मंत्री जार्ज फर्नाण्डीज की गतिविधियाँ और वक्तव्य जगमोहन व सुरक्षा-बलों के मार्ग में रोड़ा डाल रहे थे, फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा और पाकिस्तानी तत्त्वों पर दबाव बनाये रखा। कर्फ्यू आदेश, घर-घर की तलाशी, पाकिस्तानी सरगनाओं की पकड़-धकड़, पाकिस्तान से प्रशिक्षण लेकर शस्त्रास्त्रों के साथ आने वालों की नाकाबंदी जैसी बातें किसी भी देशभक्त को सुहातीं, किन्तु कैसी विडम्बना है कि जार्ज, चन्द्रशेखर जैसे जनता दल के नेताओं को तथा राजीव व उनके साथियों को चुभती थीं और ये लोग जगमोहन को कोसते हुए कभी थकते नहीं थे। तभी मौलवी फारूख की हत्या हो गयी और उसके जनाजे के जुलूस में सम्मिलित आतंकवादियों ने व्यवस्था में लगे सुरक्षाकर्मियों पर गोली चलायी, सेना ने भी जवाबी गोली चलायी। अनेक लोग मारे गये व घायल हुए। यद्यपि जगमोहन की इस दुःखद घटना में कोई ऐसी भूमिका नहीं थी, जिस पर आपत्ति की जा सकती हो। किन्तु उनके विरोधियों ने इसका राजनीतिक लाभ उठाया और ऐसा प्रचण्ड विराधी वायुमंडल बनाया कि जगमोहन को त्याग-पत्र देना पड़ा। जगमोहन-विरोधी

खेमे की जीत हुई, किन्तु सुरक्षा-बल व सेना तथा देशभक्त नागरिकों पर मानो गाज गिर गयी हो। पृथकतावादी विजयोत्सव मनाने लगे। नासमझ कहें या कुर्सी के लालची, राजनेता भी अन्दर-अन्दर खुश हुए।

यह तो समय ही बतायेगा कि उन्होंने जगमोहन को वापस बुलाकर देश की कितनी बड़ी क्षति की है। सन्तोष का विषय इतना ही है कि भले ही जगमोहन वापस आ गये हैं, किन्तु भारत सरकार ने तथा उनके स्थान पर पहुँचे गिरीश चन्द्र सक्सेना ने पूर्व की नीतियों और योजनाओं को ही आगे बढ़ाया है। उससे पर्याप्त लाभ भी हुआ है। अभी हाल में ही राज्य-प्रशासन को उग्रवादी खेमे के शीर्षस्थ नेताओं को धर-दबोचने में सफलता मिली है, जिससे उन लोगों में हड़कंप मच गया है। ऐसे मोड़ पर पाकिस्तानी नेतृत्व में भी अचानक परिवर्तन आया है। अनुदारवादियों का वहाँ वर्चस्व बढ़ा है, जिसका परिणाम भारत के लिए प्रतिकूल होने की आशंका है। वैसे भी जब पाकिस्तान में आन्तरिक कलह बढ़ती है, तो वे भारत के प्रति टकराहट की भाषा बोलकर और आवश्यकता होने पर प्रत्यक्ष टकराकर भी अपने नागरिकों का ध्यान आन्तरिक समस्याओं पर से हटाते रहे हैं। ऐसी स्थिति में भारत को अब और अधिक सजग रहना होगा।

वर्तमान स्थिति

भारत सरकार की दोषपूर्ण नीतियों और प्रदेश के राष्ट्रघाती राजनीतिक नेतृत्व ने राज्य की स्थिति को अत्यन्त विस्फोटक बना दिया है। आज सम्पूर्ण जम्मू-कश्मीर अलगाव के कगार पर खड़ा दिखाई दे रहा है। स्थान-स्थान पर बम-विस्फोट हो रहे हैं। राष्ट्रीय मान-बिन्दुओं के प्रतीक, पवित्र धर्मस्थल और पावन मन्दिर भूमिसात् किये जा रहे हैं। वरिष्ठ सरकारी अधिकारी और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों और राष्ट्रभक्त नागरिकों को चुन-चुन कर मारा जा रहा है। कश्मीर घाटी से लगभग सभी हिन्दुओं को खदेड़ा जा चुका है। आज वहाँ पर कोई भी बड़े से बड़ा व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित अनुभव नहीं कर पा रहा है। किसी का भी अपहरण और हत्या की जा सकती है। प्रशासनिक व्यवस्था में ऊपर से नीचे तक राष्ट्रघाती तत्त्व किस सीमा तक प्रवेश कर गये हैं और उनकी मानसिकता कैसी है, इसका सहज अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि राज्य के १३७ अफसरों ने भारतीय सैन्य बलों और विशेषकर राज्यपाल जगमोहन द्वारा उठाये गये सुरक्षा सम्बन्धी पगों की सार्वजनिक निंदा की और एक सांझा शिकायती पत्र संसार भर में प्रसारित किया। सीमा-पार क्षेत्र से पाकिस्तानी तत्त्वों का बड़ी संख्या में कश्मीर घाटी में निरन्तर आवागमन बना हुआ है। भारी मात्रा में शस्त्रास्त्र और विस्फोटक पदार्थ वहाँ से लाये जा रहे हैं। युवकों को जबरदस्ती आतंकवादी गतिविधियों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए पाकिस्तान भेजा जा रहा है। सभी राजनीतिक दल कश्मीर घाटी में अपनी गतिविधियाँ पूरी तरह बन्द करने के लिए बाध्य कर दिये गये हैं। उनके नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को चुन-चुन कर मारा जा रहा है। भारत सरकार के प्रायः सभी कार्यालय तथा प्रतिष्ठान उजड़ गये हैं, क्योंकि उनके अधिकारियों और कर्मचारियों को कश्मीर छोड़ने के लिए विवश कर दिया गया है और उनके नाम-पट्टों (साइन बोर्डों) से भारत/हिन्दुस्तान/इंडिया जैसे शब्द मिटा दिये गये हैं। बौद्ध हों या सिख अथवा कश्मीरी पंडित, हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय आज कश्मीर घाटी में अपने अस्तित्व के लिए खतरा

अनुभव कर रहे हैं।

वास्तविक सत्ता उग्रवादियों के हाथों में है। उनका आतंक छाया हुआ है। वे जब चाहते हैं हड़ताल करवा लेते हैं। हिन्दुओं को पत्र द्वारा और मस्जिदों के लाउडस्पीकरों द्वारा धमकी दी जा रही है कि वे कश्मीर घाटी छोड़कर भाग जायें तथा जाते समय अपने साथ अपनी सम्पत्ति अथवा युवा महिलाओं को न ले जायें। कितने ही हिन्दू नेताओं व अधिकारियों की हत्या की जा चुकी है जिनमें भा. ज. पा. के प्रादेशिक उपाध्यक्ष एवं सुप्रसिद्ध अधिवक्ता टीकालाल टिपलू, अनन्तनाग के प्रमुख वकील प्रेमनाथ भट्ट, न्यायाधीश नीलकंठ गंजू, जिन्होंने मुक्ति मोर्चा के कुख्यात नेता मकबूल बट्ट को फाँसी की सजा दी थी, दूरदर्शन के निदेशक लस्सा कौल, पी. एन. हाण्डू, ए. एन. रैना, एम. एल. भान, टी. वी. राजदान, एस. के. टिक्कू, एन. सप्रू, के. के. कौल, ए. के. वजीर, एच. एम. टी. श्रीनगर के महाप्रबन्धक एच. एल. खेड़ा, भारतीय वायुसेना के चार वरिष्ठ अधिकारी और केन्द्रीय गुप्तचर सेवा के एक वरिष्ठ अधिकारी, कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति मुशीर उल हक तथा उनके निजी सचिव सहित अनेक लोग सम्मिलित हैं। यदि कोई मुसलमान आतंकवादियों के मार्ग में बाधक बनता है तो उसे भी छोड़ा नहीं जाता।

विस्थापितों की दुर्दशा

दो लाख से अधिक हिन्दू घाटी छोड़कर जम्मू क्षेत्र में तथा देश के अन्य भागों में शरण लेने पहुँच चुके हैं। जम्मू क्षेत्र तो विस्थापितों से पट गया है। ये विस्थापित लोग प्रायः सुशिक्षित हैं और अपनी आजीविका अर्जित करने वाले रहे हैं, किन्तु अब विवश हैं। अपने ही देश में आज शरणार्थी कहलाते हैं। उनमें से कितने ही ऐसे हैं जो लाखों की चल-अचल सम्पत्ति छोड़कर आये हैं। आते समय उनके तन पर जो कपड़े थे, बस उतनी ही उनकी सम्पत्ति रह गयी थी। खेद का विषय है कि केन्द्र और राज्य की सरकारों ने प्रारम्भ में उनकी समस्याओं पर मानवीय दृष्टि से भी विचार नहीं किया। उनकी असहाय स्थिति यही कहानी कह रही है। कुछ सामाजिक संगठनों ने उदारमना नागरिकों के सहयोग से उनकी तात्कालिक आवश्यकता-पूर्ति के लिए हाथ बढ़ाया। किन्तु उनकी भी सीमाएं हैं। एक सन्तोष का विषय है कि राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ के कार्यकर्ताओं की अपील पर देशवासियों और कुछ राज्य सरकारों व औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने इन विपदाग्रस्त लोगों के लिए

धन, वस्त्र, बर्तन, ओषधियाँ और खाद्य-सामग्री आदि भेजी हैं और भेजते जा रहे हैं। भारतीय जनता पार्टी ने भी उनकी सहायता के लिए एक अखिल भारतीय कोष की स्थापना की है जिससे वे शिविर में रहने वालों को नगदी व अन्य प्रकार की सहायता दे रहे हैं। जम्मू स्थित कश्मीर सहायता समिति नामक समाज-सेवियों का एक संगठन उभर कर सामने आया है। राज्य के सामान्य जन का विश्वास व सहयोग उसको मिला। राजनीति, सम्प्रदाय और क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर कार्य करने वाले इस संगठन को विस्थापित बन्धुओं और सरकारी क्षेत्र, दोनों का विश्वास मिला। देश की कई राज्य सरकारों (मध्य प्रदेश, हिमाचल, गुजरात, राजस्थान) ने सहयोग का हाथ बढ़ाया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जम्मू-कश्मीर के संघचालक वैद्य विष्णु दत्त की अध्यक्षता में कार्य कर रही इस समिति की भूमिका स्मरणीय रहेगी।

गैरजिम्मेदार मन्त्री

लद्दाख तथा जम्मू क्षेत्रों को भी मुस्लिम-बहुल बनाने का व्यापक षड्यंत्र चल रहा है। संक्षेप में स्थिति बहुत जटिल एवं भयावह हो गयी है। जगमोहन जैसे प्रशासक भी बड़े परिश्रम के बाद ही कुछ मात्रा में नियंत्रण कर सके। चिन्ता का विषय है कि भारत सरकार अब भी समस्या के वास्तविक स्वरूप के बारे में भ्रमित है। कश्मीर घाटी से आगे बढ़कर जम्मू क्षेत्र के राजौरी, पुंछ, डोडा, किश्तवाड़ और भद्रवाह जैसे संवेदनशील सीमावर्ती क्षेत्रों में पाक समर्थक तत्त्वों की बढ़ती हुई गतिविधियों और हिन्दुओं पर किये गये हिंसक आक्रमणों की समस्या जब मई १९९० में केन्द्रीय गृहमन्त्री मुफ्ती मुहम्मद सईद के सामने उठायी गयी तो उन्होंने यह कहकर उसकी उपेक्षा कर दी कि इसमें कोई नयी बात नहीं है और जम्मू के इस क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते ही रहते हैं। जम्मू-कश्मीर के जानकार सूत्रों का कहना है कि सईद साहब और फारूख एक ही थैली के चट्टे-बट्टे रहे हैं, भले ही आज कुछ अलग दिखाई देते हैं।

केन्द्रीय मन्त्रिमंडल के दूसरे सदस्य और कश्मीर संबंधी मामलों के भूतपूर्व प्रभारी मंत्री जार्ज फर्नाण्डीज ने भी अलीगढ़ विश्वविद्यालय की एक सभा में कश्मीर के राज्यपाल की खुली आलोचना की। वरिष्ठ मंत्रियों के ऐसे वक्तव्यों से यही प्रकट होता है कि मंत्रिमंडल के सदस्य भी स्थिति के विषय में एकमत नहीं हैं और वे अपनी-अपनी विचारधारा और निजी राजनीतिक हितों से प्रेरित होकर कुछ भी बोलते रहते हैं।

नेशनल कान्फ्रेंस, कांग्रेस(इ) तथा वामपंथी व अन्य दलों की नीतियाँ और वक्तव्य भी उसी प्रकार भ्रामक हैं और वे देश-हित के स्थान पर दलीय स्वार्थों को सामने रखकर चल रहे हैं।

रोग का सही निदान आवश्यक

इसी प्रकार अनेक बुद्धिजीवी, पत्रकार और राजनीतिक प्रेक्षक वास्तविकता से बहुत अलग सोच रहे हैं। उनमें से कुछ का मानना है कि घाटी की यह स्थिति वहाँ के आर्थिक पिछड़ेपन और राजनीतिक घुटन का परिणाम है। वे यह भूल जाते हैं कि कश्मीर घाटी की तुलना में लद्दाख और जम्मू का क्षेत्र कहीं अधिक पिछड़ा हुआ है। यदि आर्थिक पिछड़ापन इस अलगाववाद का कारण होता तो घाटी के बजाय राज्य के दूसरे क्षेत्रों में यह भड़कना चाहिए था। राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित आँकड़े स्वयं ही इस विषय में बहुत कुछ कह देते हैं।

स्वाधीनता मिलने के समय जम्मू में १५३८ किलोमीटर और कश्मीर घाटी में ७४८ किलोमीटर सड़क मार्ग था। लेकिन मार्च १९८९ में स्थिति भिन्न हो गयी। राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त आँकड़ों के अनुसार मार्च १९८९ तक जम्मू में सड़क मार्ग बढ़कर ४०४१ किलोमीटर ही हो पाया, जबकि कश्मीर घाटी में सड़क मार्ग की लम्बाई बढ़कर ५३५० किलोमीटर हो गयी है। क्षेत्रफल की दृष्टि से जम्मू का क्षेत्र कश्मीर घाटी से बहुत अधिक है। वास्तविकता तो यह है कि आज कश्मीर घाटी के २८७६ ग्रामों में से २०८६ ग्राम मुख्य सड़कों से जुड़े हुए हैं। घाटी का प्रायः प्रत्येक गाँव आज सड़क-मानचित्र पर है। अपवाद केवल कुछ दूरस्थ दुर्गम पहाड़ी गाँव हैं। मेडिकल शिक्षा में प्रतिवर्ष श्रीनगर स्थित मेडिकल कालेज के ६६ से लेकर ७० प्रतिशत तक स्थानों पर कश्मीर घाटी के मुस्लिम विद्यार्थियों को ही प्रवेश मिलता है। इसी के फलस्वरूप श्रीनगर स्थित शेरे-कश्मीर चिकित्सा संस्थान उग्रवादियों और पृथकतावादियों का केन्द्र बन चुका है। डा. गोरू और खोरू उनके कुख्यात नेता हैं। राज्य की स्वास्थ्य-सेवाओं के निदेशक डा. दाबू को आतंकवादियों की सहायतार्थ गठित की गयी चिकित्सा-इकाई का संस्थापक बताया जाता है। इसके विपरीत जम्मू के मेडिकल कालेज का स्वरूप अत्यन्त छोटा है। घाटी-स्थित इंजीनियरिंग कालेज की भी यही रामकहानी है। जम्मू या लद्दाख क्षेत्र में कोई इंजीनियरिंग कालेज तो है ही नहीं। राज्य-सेवाओं पर कश्मीर घाटी के लोगों का एकाधिकार है।

जहाँ तक राजनीतिक घुटन की बात है, वह भी निराधार है। पिछले ४३ वर्षों में राज्य का मुख्यमंत्री घाटी का ही व्यक्ति होता रहा है और सरकार के प्रायः सभी

महत्त्वपूर्ण पद घाटी वालों के पास रहे हैं। इन तथ्यों के प्रकाश में राजनीतिक घुटन की बातें करना अपने को धोखे में रखना है।

यह समझना भी भूल होगी कि कश्मीर घाटी के लोग जम्मू-अथवा लद्दाख की तुलना में अधिक सजग हैं, इसलिए वहाँ आन्दोलन है और जम्मू क्षेत्र के लोग ढीले-ढाले हैं इसलिए वहाँ अशान्ति नहीं है। श्री प्रेमनाथ डोगरा के नेतृत्व में प्रजा परिषद् और जम्मू क्षेत्र की जनता द्वारा चलाया गया 'एक देश–एक विधान–एक निशान' का आन्दोलन जम्मू की राष्ट्रीय चेतना और बलिदानी परम्परा का ज्वलन्त उदाहरण है। जम्मू क्षेत्र के इस आन्दोलन की सफलता इस बात से आँकी जा सकती है कि डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में केरल से कश्मीर तक के जागरूक नागरिक व भारतीय जनसंघ का अखिल भारतीय संगठन प्रजा परिषद् के समर्थन में आन्दोलन में कूद पड़े। शेख अब्दुल्ला की देशद्रोहिता के विरुद्ध छेड़ा गया उनका वह बलिदानी सत्याग्रह भारतीय आन्दोलनों के इतिहास का सबसे गौरवशाली पृष्ठ है। उसका स्मरण हमें अनेक संकेत देता है। अच्छा होगा कि संबंधित पक्ष उसको ध्यान में रखें। कश्मीर घाटी की यह स्थिति उनकी राजनीतिक चेतना का परिणाम नहीं है, वरन् पिछले ४३ वर्षों में रियासत के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा भड़काये गये मजहबी उन्माद और पृथकूतावाद का परिणाम है। जम्मू क्षेत्र और लद्दाख के लोग घाटी के आन्दोलनकारियों के साथ न हैं और न होंगे क्योंकि उनकी भारत-भक्ति, जो उनके रक्त में घुली हुई है, पाकिस्तान या भारत के किसी शत्रु के साथ हाथ मिलाने की अनुमति नहीं दे सकती। वे तथाकथित राजनीतिक व आर्थिक कारणों से भारत से पृथक् होने की बात सोच भी नहीं सकते। प्रबुद्ध वर्ग ने, घाटी के लोगों और शेष रियासत के लोगों की मानसिकता में यह जो अन्तर है उसे ठीक से नहीं आँका। इसके बिना वे समस्या का वास्तविक कारण नहीं समझ सकेंगे और न ही उसका सही समाधान पा सकेंगे।

शेख अब्दुल्ला, डॉ. फारूख और शाह के शासन-काल में भारत-विरोधी व पाकिस्तानपरस्त लोगों को प्रशासनिक तंत्र में घुसने की पूरी सुविधा मिली थी। इसका परिणाम यह हुआ कि सुरक्षा-बलों द्वारा भारत-रक्षा हेतु बनायी गयी योजनाओं की पूरी जानकारी शत्रु पक्ष के पास पहुँच जाती थी। पृथकूतावादी और राष्ट्रविरोधी तत्त्वों के विरुद्ध उठाये जाने वाले पगों की सूचना उनके पास कार्यवाही होने से पहले ही पहुँच जाती है। राज्यपाल जगमोहन के शासन के दौरान ऐसे अनेक सरकारी

कर्मचारियों और अधिकारियों को रंगे हाथों पकड़ा गया था। यह रहस्य नहीं रह गया कि पाकिस्तानी सेना के सहयोग से भारत-विरोधी आतंकवादियों के प्रशिक्षण-केन्द्र पाकिस्तान में चलाये जा रहे हैं और उन्हें आधुनिक शस्त्रास्त्रों से लैस कर भारत में भेजा जा रहा है। पाकिस्तानी अखबारों में भारत के विरुद्ध 'जेहाद' के विज्ञापन छापे जा रहे हैं। पाकिस्तान से प्रशिक्षित आतंकवादी घाटी में आकर सेना और केन्द्रीय सुरक्षा-बलों पर गोलियाँ चलाते हैं। वे उनकी चौकियों व वाहनों पर आये दिन राकेटों से हमला करते हैं। १४ अगस्त १९८९ को ऐसे ही तत्त्वों ने श्रीनगर तथा घाटी के अनेक नगरों में पाकिस्तान का स्थापना-दिवस मनाया था। अगले दिन १५ अगस्त को जब भारतीय स्वाधीनता-दिवस मनाया जाता है, उन्होंने ब्लैक-आउट करके मातम मनाया था। राज्य-ध्वज तिरंगे को स्थान-स्थान पर जलाया गया था। अपहरण और फिरौती की घटनाएं आये दिन की बात हो गयी हैं। फिरौती हेतु पूरा धन न मिलने पर अपहृतों की नृशंस हत्या करके, उनके शवों को सड़कों पर फेंक दिया जाता है। नारियों के स्तन कटे शरीर, बालकों व युवकों के आरे से चीरे गये तन, अंग-अंग काटकर उनकी बोटियाँ मोहल्लों व बाजारों में फेंकने के बाद मस्जिद के लाउडस्पीकरों से चेतावनी दी जाती है—'हिन्दुस्तानी कुत्तो ! कश्मीर छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारा भी यही हाल होगा।' पाकिस्तान ने अपने इन एजेंटों द्वारा भारत के विरुद्ध अघोषित किन्तु योजनाबद्ध युद्ध छेड़ रखा है। युद्ध की उनकी वह योजना 'आपरेशन टोपक' (परिशिष्ट ५) के नाम से विश्व के सभी जागरूक बुद्धिजीवियों और राजनेताओं को ज्ञात है। भारत सरकार और देशवासी पाकिस्तानी इरादों को समझे बिना जम्मू-कश्मीर में उत्पन्न स्थिति पर नियंत्रण नहीं कर सकते हैं। युद्ध को युद्ध के रूप में ही लड़ना होगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संगठन ने स्थिति का गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् उसका वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है और उसके समाधान के लिए कई ठोस सुझाव भी दिये हैं। संघ की जम्मू-कश्मीर इकाई ने अपना प्रतिनिधिमंडल दो बार देश की राजधानी में भेजा। उसने राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, गृहमंत्री से लेकर देश के विभिन्न राजनीतिक दलों के पदाधिकारियों तक अर्थात् देश के राजनीतिक नेतृत्व को पूरी जानकारी दी। उसी के साथ राजधानी के सभी वरिष्ठ पत्रकारों, सम्पादकों तथा सामाजिक व धार्मिक संगठनों के लोगों से भी वे मिले। घाटी से हिन्दुओं के निकलने के खतरे और उससे होने वाले दुष्परिणामों तथा उसको समय रहते रोकने

के उपायों की विस्तृत जानकारी सबको दी गयी। संघ की राज्य इकाई ने अपने प्रतिनिधि लगभग सभी प्रदेशों में भेजकर देशवासियों को आसन्न संकट से परिचित कराने का व्यापक प्रयास भी किया। संगठन की अखिल भारतीय प्रतिनिधिसभा ने मार्च १९९० में हुई अपनी बैठक में स्थिति पर विस्तृत विचार किया और देशवासियों व सरकार के समक्ष अपने सुझावों को एक प्रस्ताव में समाहित किया है। (परिशिष्ट ६)। उस प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से आग्रह किया गया है कि वह घाटी की वर्तमान स्थिति को पाकिस्तान का अघोषित किन्तु पूर्ण युद्ध माने और उसका सामना युद्ध स्तर पर करने का निश्चय करे। किसी भी राष्ट्र के लिए आत्मरक्षा प्रथम वरीयता का कार्य होता है। आर्थिक उन्नति और राजनीतिक व्यवस्थाओं की ओर ध्यान देना शांतिकाल का कार्य है, न कि युद्ध के दिनों का। भारत सरकार को भी इस नियम के अनुसार अपनी वरीयता निर्धारित कर लेनी चाहिए।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जम्मू-कश्मीर के संदर्भ में अन्तरराष्ट्रीय समीकरणों की भी समीक्षा की। उसका यह मानना है कि अन्तरराष्ट्रीय शक्तियाँ यद्यपि यह स्वर भी गुंजा रही हैं कि पाकिस्तान कश्मीर-समस्या के बारे में भारत से सीधी वार्ता करे, किन्तु उनका वास्तविक हेतु वह नहीं है जो ऊपर से दिखाई देता है। १९९० के जुलाई मास में संघ के केन्द्रीय कार्यकारी मण्डल ने एक प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से आग्रह किया है कि वह संबंधित पक्षों को यह बता दे कि जम्मू-कश्मीर सहित भारत का एक इंच भू-भाग भी लेन-देन की वस्तु नहीं है। (परिशिष्ट ७)

सिंहावलोकन

पूर्व-परिच्छेदों में जम्मू-कश्मीर राज्य से सम्बन्धित भारतीय राजनीति का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास किया गया है। उसका सार यह है कि भारत सरकार की गत ४३ वर्षों की अदूरदर्शी नीतियों के कारण भारत का नन्दन वन कश्मीर धूधू कर जल रहा है। यह जगजाहिर है कि घाटी के तथाकथित राष्ट्रवादी नेता कितने भारतनिष्ठ थे या हैं। यदि कोई कबूतर बिल्ली को देखकर अपनी आँखें बन्द कर ले, तो भले ही बिल्ली रूपी संकट उसको दिखाई न पड़े, उसका यह अर्थ नहीं होता कि बिल्ली नहीं है। यदि भारत के राजनीतिक दल कश्मीर घाटी के राष्ट्रघाती नेताओं के वास्तविक मंसूबों को न समझें और उनके ही हाथों में सत्ता सौंपकर स्वयं को और भारत को सुरक्षित अनुभव करें तो यही कहना पड़ेगा कि कबूतर के समान उन्होंने भी अपनी आँखें बन्द कर ली हैं।

देश के प्रबुद्धजन और राजनीतिक नेताओं सहित जनता-जनार्दन उसकी गहराई को समझें।

पिछले ४३ वर्षों में किये गये भारत सरकार के आत्मघाती कृत्यों और भूलों का परिणाम यह है कि –

१. घाटी की युवा पीढ़ी भावनात्मक स्तर-पर भारत के विरुद्ध हो चुकी है। उसमें से कुछ कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करने के पक्ष में हैं, तो अनेक उसको भारत व पाकिस्तान दोनों से अलग राज्य बनाने का सपना देख रहे हैं।

२. वह युवा पीढ़ी पाकिस्तान सरकार द्वारा दिये गये अमरीकी व चीनी शस्त्रों से लैस है और उनके प्रयोग का प्रशिक्षण पाकिस्तान में पा चुकी है। पाकिस्तान द्वारा ऐसे युवकों की भर्ती की जा रही है और उन्हें आतंक फैलाने का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

३. घाटी के मुस्लिम राजनीतिक नेता, चाहे वे प्रकटतः कांग्रेस से जुड़े हों या नेशनल

कान्फ्रेन्स से, प्लेबीसाइट-फ्रंट के हों या जमाते इस्लामी के या हिजबुल मुजाहिदीन अथवा जे. के. एल. एफ. के हों, मन में एक आकांक्षा रखते हैं। वे भारत के प्रति शत्रु की भूमिका निभा रहे हैं। उनमें से किसी पर भारतीय दृष्टि से भरोसा करना और उसे घाटी में राजनीति की धुरी बनाना अपने को धोखा देना है। वह वैसी ही हिमालयी भूल होगी जैसी कि शेख अब्दुल्ला या उसके लड़के फारूख या दामाद गुल मुहम्मद शाह पर भरोसा करके की गयी थी।

४. घाटी की युवा पीढ़ी में भड़का भारत-विरोधी उन्माद आर्थिक कारणों से अर्थात् बेराजगारी या औद्योगिक व व्यावसायिक विकास की धीमी गति या गरीबी के कारण नहीं है। उसका आधार इस्लामी कठमुल्लापन, असहिष्णुता और भारत-विरोध है।

५. घाटी के कुछ नेताओं व युवकों के हौसले इतने आगे बढ़ चुके हैं कि वे कश्मीर को आधार बनाकर शेष भारत पर हरा झण्डा फहराने व उसके इस्लामीकरण की खुली घोषणाएं कर रहे हैं। नेशनल कान्फ्रेन्स के प्रमुख नेता और जम्मू-कश्मीर विधान परिषद् के भूतपूर्व उपाध्यक्ष मौलाना अताउल्ला का कुछ समय पूर्व विधान-परिषद् में दिया गया भाषण उस मनोरचना का दिग्दर्शन करा देता है। अताउल्ला ने अपने भाषण में कहा था कि कश्मीरी मुसलमानों ने भारत में मिलने का फैसला इसलिए किया था कि उन्हें यहाँ रहकर भारत को इस्लामी झण्डे के नीचे लाना है।

६. राज्य के मुस्लिम नेतृत्व ने घाटी के बाहर जम्मू क्षेत्र और लद्दाख क्षेत्र में मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने के योजनाबद्ध प्रयास शेख अब्दुल्ला, फारूख और शाह के संरक्षण में तेजी से प्रारम्भ कर दिये थे। भारत के इस्लामीकरण के लिए वह उनका पहला पग था।

७. घाटी के हिन्दुओं को वहाँ से उजाड़ने के साथ-साथ उन्होंने लद्दाख से बौद्ध हिन्दुओं को भी भगाने की योजना बना ली है। वहाँ उसी दृष्टि से आगजनी, लूटमार, महिलाओं के अपहरण व धर्मान्तरण का सिलसिला प्रारम्भ हो चुका है। उनका अगला लक्ष्य है जम्मू-क्षेत्र। वहाँ के मन्दिरों में गोमांस फेंकना, भद्रवाह-किश्तवार क्षेत्र में बम-विस्फोट तथा हिन्दू मोहल्लों पर हमला उनके अभियान का पहला चरण है।

८. पाकिस्तान के राष्ट्राध्यक्ष गुलाम इसहाक खाँ की स्पष्ट घोषणा है कि कश्मीर के बिना पाकिस्तान-निर्माण की योजना अधूरी रह गयी है, किसी भी कीमत पर पाकिस्तान उसे लेकर रहेगा। उसकी तैयारियाँ उसी उद्देश्य को सामने रखकर चल रही हैं। सन् १९७१ की अपेक्षा पाकिस्तान का क्षेत्रफल व जनसंख्या, उसका पूर्वी भाग (बंगाल) अलग हो जाने के कारण, आधी रह गयी है, किन्तु सैन्य बल कई गुना बढ़ चुका है।

९. अमरीका व उसके सहयोगी भारत पर लगातार दबाव डाल रहे हैं कि कश्मीर समस्या को वार्ता-माध्यम से हल किया जाये। इसके दो अर्थ हैं। एक तो यह कि पाकिस्तान के अघोषित युद्ध का भारत युद्ध-स्तर पर मुकाबला न करे, और दूसरा यह कि जम्मू-कश्मीर राज्य का बँटवारा भारत स्वीकार करे और घाटी सहित अन्य मुस्लिम बहुल क्षेत्र पाकिस्तान को दे दे। जानकार सूत्रों के अनुसार भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू युद्धविराम-रेखा के आधार पर बँटवारे के लिए सहमत हो गये थे। किन्तु पाकिस्तान घाटी के बिना समझौता करने को तैयार नहीं हुआ था, इसलिए नेहरू की योजना सिरे नहीं चढ़ी। उनकी पुत्री इन्दिरा गांधी ने प्रधानमन्त्री के नाते शिमला समझौते में युद्ध-विराम रेखा को नियंत्रण-रेखा की संज्ञा देना स्वीकार करके बँटवारे की दिशा में एक पग आगे बढ़ा भी दिया था। विश्व की बड़ी शक्तियाँ उसी दिशा में आगे बढ़ने के लिए भारत पर दबाव डाल रही हैं।

१०. चीन-पाकिस्तान भारत के विरुद्ध एकजुट हैं, क्योंकि पाकिस्तान ने कश्मीर का गिलगित का एक भाग, जो सामरिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, चीन को रिश्वत के रूप में दिया है। उसके बदले में चीन पाकिस्तान को सब प्रकार की सैन्य व आर्थिक सहायता दे रहा है।

११. अमरीका और रूस के बीच अब पहले जैसी तनाव की स्थिति नहीं रही है, इस कारण रूस का भारत से लगाव कम हो रहा है।

१२. सऊदी अरब, जोर्डन और ईरान व तुर्की जैसे मुस्लिम देश पाकिस्तान के साथ खुले रूप से हैं और शेष मुस्लिम देश पाकिस्तान का खुला समर्थन तो नहीं करते हैं, किन्तु अमरीका जैसे देशों के सुर में सुर मिलाकर, पाकिस्तान को अन्दर से शक्ति देते रहते हैं।

१३. अरब देशों के सहयोग से पाकिस्तान अणुबम बनाने की क्षमता अर्जित कर चुका है।

१४. पश्चिमी देशों के इशारों पर 'इण्टरनेशनल एमेनेस्टी' एवं मानवाधिकार सुरक्षा के नाम पर काम करनेवाली तथाकथित संस्थाएँ व व्यक्ति पाकिस्तानी घुसपैठियों व हस्तकों के नृशंस अत्याचारों की ओर आँख बंद रखते हुए, भारतीय सेना और राज्य-प्रशासन द्वारा की गयी सुरक्षा-व्यवस्था को बदनाम करने और उनका मनोबल तोड़ने का षड्यंत्र करते रहते हैं। स्वाभाविक ही पाकिस्तान उनको हवा-पानी देता रहता है। वह और उसके समर्थक जानते हैं कि भारतीय सेना को बदनाम कर भारतीय शासन का मनोबल तोड़े बिना जम्मू-कश्मीर को हथियाने की अभिलाषा पूरी नहीं होगी।

उपर्युक्त किसी भी बात को अनदेखा करना भारत के लिए आत्मघाती होगा। परिस्थिति से निपटने के लिए उसका सही आकलन और यथार्थवादी नीतियों का निर्धारण समय की मांग है। निम्न पग उठाना देश की अनिवार्य आवश्यकता है :–

१. संविधान की धारा ३७० को अविलंब हटाना होगा। उसके बने रहते जम्मू-कश्मीर भारत का भाग है भी और नहीं भी है। ऐसी असमंजस की स्थिति शत्रु का बल बढ़ाती है, अपना नहीं। इस धारा के समाप्त होते ही पृथक्तावादी जुनूनी गुब्बारे की हवा निकल जायेगी।

२. राज्य की सांविधानिक व्यवस्थाएँ इस प्रकार की जायें कि कश्मीर घाटी से लद्दाख व जम्मू क्षेत्र अलग इकाई हो जाये, ताकि घाटी की पृथक्तावादी लपटें जम्मू व लद्दाख को झुलसा न सकें।

३. जम्मू-कश्मीर राज्य की पूर्वोक्त संरचना बनाने के साथ ही घाटी और पाक-अधिकृत कश्मीर के बीच की उड़ी-टिटवाल पट्टी को भारत सरकार अपने नियंत्रण में रखे, जिससे पाकिस्तान की सीधी पहुँच घाटी में न हो।

४. सन् १९४७ में पाक क्षेत्र से जम्मू क्षेत्र में आये भारतीय हिन्दुओं को भारतीय नागरिकता के सभी अधिकार दिये जायें जैसे कि देश के अन्य भागों में पहुँचे हिन्दुओं को दिये गये हैं।

५. कश्मीर घाटी में सुरक्षा-व्यवस्था इतनी सक्षम बनायी जाय कि वहाँ से चले आये हिन्दू वापस जाकर शान्ति और स्वाभिमान से जीवन-यापन कर सकें और राज्य के शेष भाग के लोग भी वहाँ जाकर बस सकें। सांविधानिक व्यवस्थाओं में वे सभी सुधार किये जायें जिससे शेष भारत के लोग भी यदि चाहें तो वहाँ बस सकें और समान नागरिक अधिकार प्राप्त कर सकें।

६. जब तक घाटी में पाकिस्तान का अघोषित युद्ध जारी है, भारतीय सेना को शत्रुओं और उनके हस्तकों से निपटने के लिए उनके ठिकानों तक पीछा करने और उनके द्वारा चलाये जा रहे उग्रवादी प्रशिक्षण केन्द्रों को नष्ट करने जैसे सभी आवश्यक अधिकार दिये जायें।

७. भारत-सरकार और अन्य राज्य-सरकारों द्वारा जम्मू-कश्मीर में भेजे गये अधिकारियों व कर्मियों को एवं राज्य में स्थित गैर-सरकारी उद्योगों व प्रतिष्ठानों में कार्यरत अधिकारियों व कर्मियों को भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त सभी नागरिक अधिकार देश के अन्य भागों में रहने वाले नागरिकों के समान उपलब्ध हों। जम्मू-कश्मीर राज्य का कोई नियम या विधान उसमें बाधक न हो।

८. अन्यान्य राज्यों की सरकारें तथा केन्द्र सरकार जम्मू-कश्मीर में रोजगार-प्रधान उद्योग व व्यवसाय चलायें। देश के सभी भागों से लोगों को वहाँ काम करने के लिए बुलाया जाये। क्षेत्रीय आधार पर किसी के विरुद्ध पक्षपात न हो। विभिन्न सम्प्रदायों व भाषाओं के लोगों को वहाँ बसाया जाय। घाटी में भड़का सांप्रदायिक उन्माद व पृथक्तावाद तभी नियंत्रित हो सकेगा और उसके स्थान पर भावनात्मक एकता व सहिष्णुता पुष्ट होगी।

९. वैसे तो पूरे राज्य में, किन्तु घाटी व नियंत्रण-रेखा के पास के क्षेत्र में विशेषकर, जहाँ इस्लामी पृथक्तावाद सिर उठा रहा है, अवकाश-प्राप्त व कार्यरत सैनिकों के परिवारों को चल-अचल सम्पत्ति खरीदने व बनाने तथा काम-धन्धा प्रारम्भ करने की सुविधाएं दी जायें।

१०. गुप्तचर विभाग, पुलिस प्रशासन, न्यायिक प्रशासन में कार्यरत लोगों की विशेष जाँच की जाये और पाक-परस्त तथा भारत-विरोधी तत्त्वों को नौकरी से बाहर किया जाये तथा उनके स्थान पर भारत के प्रति निष्ठावान् लोगों को नियुक्त किया जाये।

११. मजहबी जुनून और उसके आधार पर पृथक्तावाद भड़काने वाले मकतबों तथा सामाजिक-साम्प्रदायिक संस्थाओं पर प्रतिबंध लगाया जाये। साम्प्रदायिक समभाव और राष्ट्र-भक्ति की शिक्षा देने वाले विद्यालयों को बड़ी संख्या में प्रारम्भ किया जाय। उन शिक्षा-केन्द्रों में औपचारिक शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा पर भी पूरा बल दिया जाय। शिक्षकों की नियुक्ति से पूर्व उनकी मनोरचना के बारे में ठीक जाँच-पड़ताल की जाय और संदिग्ध निष्ठा वाले तत्त्वों को शिक्षा विभाग में प्रवेश न दिया जाय।

१२. जम्मू-कश्मीर राज्य में, विशेषकर घाटी में, स्थानीय निकायों से लेकर विधान-सभा व संसद् तक के चुनावों को तब तक स्थगित रखा जाय, जब तक कि क्षेत्र में पाकिस्तानी तत्त्वों एवं आतंकवादियों की गतिविधियाँ जारी हैं। लोकतंत्र की दुहाई देने वाले तथाकथित मानवाधिकारवादियों की चिल्लपों से विचलित न होते हुए 'पहले राष्ट्र-रक्षा, फिर और कुछ' के सिद्धान्त पर अडिग रहना होगा। सतर्क रहना होगा कि राष्ट्रघाती तत्त्व किसी भी माध्यम से – युद्ध अथवा लोकतांत्रिक प्रक्रिया से – सिर न उठा सकें। इस दृष्टि से संविधान और चुनाव-नियमावली में संशोधन करना हो, तो कर लेना चाहिए।

समस्त देशवासियों, विशेषकर जम्मू-कश्मीर के नागरिकों को बहुत सतर्क रहना चाहिए कि राज्य में कभी ऐसे व्यक्तियों को बढ़ावा न मिले जिनकी निष्ठाएँ संदिग्ध हों। राज्य की स्थिति इतनी सामान्य बनानी होगी कि विस्थापित लोग अपने क्षेत्रों को वापस हो सकें और महाराजा हरिसिंह, प्रेमनाथ डोगरा, मेहरचन्द महाजन, बख्शी गुलाम मुहम्मद और जी. एम. सादिक जैसे राष्ट्रवादी नायक उभर सकें। जब तक यह सम्भव न हो, राज्य का प्रशासन जगमोहन जैसे कुशल प्रशासक, सम्प्रदाय-निरपेक्ष व न्यायसम्मत व्यवस्था देने वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति को सौंपना चाहिए। राष्ट्र में ऐसे अनुभवी प्रशासकों का अभाव नहीं है जो कुर्सी के बजाय राष्ट्र-हित को वरीयता देंगे। देशवासियों का कर्तव्य है कि ऐसे व्यक्तियों को खुला समर्थन दें और एक ऐसे राजनीतिक वातावरण का निर्माण करें, जिसमें भारत में 'एक प्रधान, एक विधान और एक निशान' की अवधारणा को कोई चुनौती न दे सके और भारत अखंड रहे।

५. कश्मीर घाटी में सुरक्षा-व्यवस्था इतनी सक्षम बनायी जाय कि वहाँ से चले आये हिन्दू वापस जाकर शान्ति और स्वाभिमान से जीवन-यापन कर सकें और राज्य के शेष भाग के लोग भी वहाँ जाकर बस सकें। सांविधानिक व्यवस्थाओं में वे सभी सुधार किये जायें जिससे शेष भारत के लोग भी यदि चाहें तो वहाँ बस सकें और समान नागरिक अधिकार प्राप्त कर सकें।

६. जब तक घाटी में पाकिस्तान का अघोषित युद्ध जारी है, भारतीय सेना को शत्रुओं और उनके हस्तकों से निपटने के लिए उनके ठिकानों तक पीछा करने और उनके द्वारा चलाये जा रहे उग्रवादी प्रशिक्षण केन्द्रों को नष्ट करने जैसे सभी आवश्यक अधिकार दिये जायें।

७. भारत-सरकार और अन्य राज्य-सरकारों द्वारा जम्मू-कश्मीर में भेजे गये अधिकारियों व कर्मियों को एवं राज्य में स्थित गैर-सरकारी उद्योगों व प्रतिष्ठानों में कार्यरत अधिकारियों व कर्मियों को भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त सभी नागरिक अधिकार देश के अन्य भागों में रहने वाले नागरिकों के समान उपलब्ध हों। जम्मू-कश्मीर राज्य का कोई नियम या विधान उसमें बाधक न हो।

८. अन्यान्य राज्यों की सरकारें तथा केन्द्र सरकार जम्मू-कश्मीर में रोजगार-प्रधान उद्योग व व्यवसाय चलायें। देश के सभी भागों से लोगों को वहाँ काम करने के लिए बुलाया जाये। क्षेत्रीय आधार पर किसी के विरुद्ध पक्षपात न हो। विभिन्न सम्प्रदायों व भाषाओं के लोगों को वहाँ बसाया जाय। घाटी में भड़का सांप्रदायिक उन्माद व पृथक्तावाद तभी नियंत्रित हो सकेगा और उसके स्थान पर भावनात्मक एकता व सहिष्णुता पुष्ट होगी।

९. वैसे तो पूरे राज्य में, किन्तु घाटी व नियंत्रण-रेखा के पास के क्षेत्र में विशेषकर, जहाँ इस्लामी पृथक्तावाद सिर उठा रहा है, अवकाश-प्राप्त व कार्यरत सैनिकों के परिवारों को चल-अचल सम्पत्ति खरीदने व बनाने तथा काम-धन्धा प्रारम्भ करने की सुविधाएं दी जायें।

१०. गुप्तचर विभाग, पुलिस प्रशासन, न्यायिक प्रशासन में कार्यरत लोगों की विशेष जाँच की जाये और पाक-परस्त तथा भारत-विरोधी तत्त्वों को नौकरी से बाहर किया जाये तथा उनके स्थान पर भारत के प्रति निष्ठावान् लोगों को नियुक्त किया जाये।

११. मजहबी जुनून और उसके आधार पर पृथक्तावाद भड़काने वाले मकतबों तथा सामाजिक-साम्प्रदायिक संस्थाओं पर प्रतिबंध लगाया जाये। साम्प्रदायिक समभाव और राष्ट्र-भक्ति की शिक्षा देने वाले विद्यालयों को बड़ी संख्या में प्रारम्भ किया जाय। उन शिक्षा-केन्द्रों में औपचारिक शिक्षा के साथ व्यावसायिक शिक्षा पर भी पूरा बल दिया जाय। शिक्षकों की नियुक्ति से पूर्व उनकी मनोरचना के बारे में ठीक जाँच-पड़ताल की जाय और संदिग्ध निष्ठा वाले तत्त्वों को शिक्षा विभाग में प्रवेश न दिया जाय।

१२. जम्मू-कश्मीर राज्य में, विशेषकर घाटी में, स्थानीय निकायों से लेकर विधान-सभा व संसद् तक के चुनावों को तब तक स्थगित रखा जाय, जब तक कि क्षेत्र में पाकिस्तानी तत्त्वों एवं आतंकवादियों की गतिविधियाँ जारी हैं। लोकतंत्र की दुहाई देने वाले तथाकथित मानवाधिकारवादियों की चिल्लपों से विचलित न होते हुए 'पहले राष्ट्र-रक्षा, फिर और कुछ' के सिद्धान्त पर अडिग रहना होगा। सतर्क रहना होगा कि राष्ट्रघाती तत्त्व किसी भी माध्यम से – युद्ध अथवा लोकतांत्रिक प्रक्रिया से – सिर न उठा सकें। इस दृष्टि से संविधान और चुनाव-नियमावली में संशोधन करना हो, तो कर लेना चाहिए।

समस्त देशवासियों, विशेषकर जम्मू-कश्मीर के नागरिकों को बहुत सतर्क रहना चाहिए कि राज्य में कभी ऐसे व्यक्तियों को बढ़ावा न मिले जिनकी निष्ठाएँ संदिग्ध हों। राज्य की स्थिति इतनी सामान्य बनानी होगी कि विस्थापित लोग अपने क्षेत्रों को वापस हो सकें और महाराजा हरिसिंह, प्रेमनाथ डोगरा, मेहरचन्द महाजन, बख्शी गुलाम मुहम्मद और जी. एम. सादिक जैसे राष्ट्रवादी नायक उभर सकें। जब तक यह सम्भव न हो, राज्य का प्रशासन जगमोहन जैसे कुशल प्रशासक, सम्प्रदाय-निरपेक्ष व न्यायसम्मत व्यवस्था देने वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति को सौंपना चाहिए। राष्ट्र में ऐसे अनुभवी प्रशासकों का अभाव नहीं है जो कुर्सी के बजाय राष्ट्र-हित को वरीयता देंगे। देशवासियों का कर्तव्य है कि ऐसे व्यक्तियों को खुला समर्थन दें और एक ऐसे राजनीतिक वातावरण का निर्माण करें, जिसमें भारत में 'एक प्रधान, एक विधान और एक निशान' की अवधारणा को कोई चुनौती न दे सके और भारत अखंड रहे।

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१ : महाराजा का भारत में विलय का प्रस्ताव

(जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरि सिंह द्वारा भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबैटन को २६ अक्टूबर १९४७ को लिखा गया पत्र)

प्रिय माउण्टबैटन,

मैं महामहिम को अवगत कराना चाहता हूँ कि मेरे राज्य में गंभीर आपात स्थिति उत्पन्न हो गयी है तथा मैं आपकी सरकार से त्वरित सहायता के लिए प्रार्थना करता हूँ।

महामहिम जानते ही हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य का भारत या पाकिस्तान किसी भी अधिराज्य (डोमिनियन) में विलय नहीं हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से मेरा राज्य दोनों अधिराज्यों से संलग्न है। इसके दोनों के साथ अत्यावश्यक आर्थिक व सांस्कृतिक संबंध हैं। इसके अतिरिक्त सोवियत संघ और चीन के साथ मेरे राज्य की संयुक्त सीमा है। भारत व पाकिस्तान दोनों अधिराज्य अपने वैदेशिक संबंधों में इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते।

मैं यह निश्चय करने के लिए समय चाहता था कि मैं किस अधिराज्य में सम्मिलित होऊँ अथवा क्या दोनों के ही साथ मित्रता और सौहार्दपूर्ण संबंध बनाये रखते हुए (मेरे राज्य का) स्वतंत्र रहना दोनों अधिराज्यों और मेरे राज्य के सर्वोत्तम हित में नहीं है ?

इसी दृष्टि से मैंने दोनों अधिराज्यों को मेरे राज्य के साथ 'यथास्थिति संधि' करने के लिए कहा था। पाकिस्तान सरकार ने इस संधि को स्वीकार कर लिया। भारत अधिराज्य ने मेरी सरकार के प्रतिनिधि के साथ और वार्ता करने की इच्छा व्यक्त की थी। नीचे इंगित घटनाओं को देखते हुए मैं इसकी व्यवस्था नहीं कर पाया। वास्तव में पाकिस्तान सरकार (मेरे) राज्य में डाक व तार व्यवस्था का संचालन कर रही है।

यद्यपि पाकिस्तान सरकार के साथ हमारी यथास्थिति विराम-संधि है, फिर भी उस सरकार ने मेरे राज्य के लिए भोजन, नमक व पेट्रोल जैसी वस्तुओं की आपूर्ति को निरन्तर और उत्तरोत्तर अधिक से अधिक अवरुद्ध करने की अनुमति दी।

आधुनिक शस्त्रों से सज्जित घुसपैठियों, सादी वेशभूषा में सैनिकों और आततायियों को राज्य में पहले पुंछ, फिर सियालकोट और अंततः हजारा जिले से जुड़े रामकोट की ओर के क्षेत्र में घुसपैठ करने की अनुमति दी गयी है। परिणामस्वरूप राज्य के पास जो सीमित सेना थी उसको छितरा देना पड़ा और इस प्रकार एक ही साथ अनेक केन्द्रों पर शत्रु का सामना करना पड़ा। इससे वहाँ जान-माल के भारी विनाश व लूटमार को रोकना कठिन हो गया है। महोरा विद्युत् उत्पादन गृह, जिससे सम्पूर्ण श्रीनगर में बिजली की आपूर्ति होती है, जला दिया गया। भारी संख्या में महिलाओं के अपहरण व बलात्कार की घटनाओं ने मेरा हृदय चीर दिया है। इस प्रकार राज्य पर टूट पड़ी ये बर्बर जंगली फौजें संपूर्ण राज्य पर अधिकार करने की दृष्टि से पहले मेरी सरकार की ग्रीष्मकालीन राजधानी श्रीनगर पर कब्जा करने के उद्देश्य से आगे बढ़ रही हैं।

मानसहरा-मुजफ्फराबाद मार्ग से लगातार ट्रकों द्वारा उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के सुदूर क्षेत्रों से लाये गये कबाइलियों की व्यापक स्तर पर घुसपैठ और उनका नवीनतम हथियारों से लैस होना उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त की प्रान्तीय सरकार व पाकिस्तान सरकार की जानकारी के बिना संभव नहीं है। मेरी सरकार द्वारा बार-बार निवेदन किये जाने के बावजूद इन छापामारों को नियंत्रित करने या मेरे राज्य में घुसने से रोकने के लिए कोई प्रयास नहीं किये गये। पाकिस्तान रेडियो ने तो यह कहानी भी फैलायी कि कश्मीर में एक अस्थायी सरकार स्थापित हो चुकी है। मेरे राज्य की सामान्यतः मुस्लिम या गैर-मुस्लिम जनता ने इसमें किसी भी प्रकार भाग नहीं लिया है।

इस समय मेरे राज्य में उत्पन्न परिस्थिति और गम्भीर आपात स्थिति को देखते हुए मेरे पास भारतीय अधिराज्य से सहायता माँगने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है। स्वाभाविक है कि मेरे राज्य का भारतीय अधिराज्य में विलय हुए बिना मेरे द्वारा माँगी गयी सहायता वे नहीं भेज सकते। तदनुसार मैंने ऐसा करने का निश्चय कर लिया है, और मैं आपकी सरकार की स्वीकृति के लिए विलय-पत्र संलग्न कर रहा हूँ। दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि अपने राज्य व जनता को लुटेरों के

हवाले छोड़ दूँ। जब तक मैं इस राज्य का शासक हूँ और अपने देश की रक्षा हेतु जीवित हूँ, इस विकल्प को कदापि घटित नहीं होने दूंगा।

मैं महामहिम की सरकार को यह भी सूचित कर दूँ कि मैं तुरन्त एक अंतरिम सरकार स्थापित करने और इस आपातकाल में शेख अब्दुल्ला से यह कहने का इच्छुक हूँ कि वे मेरे प्रधानमंत्री के साथ मिलकर राज्य के उत्तरदायित्वों को निभायें।

यदि मेरे राज्य को बचाना है, तो श्रीनगर को तुरन्त सहायता प्राप्त होनी चाहिए। श्री मेनन इस स्थिति से पूर्णतः अवगत हैं, यदि और व्याख्या की आवश्यकता हुई तो वे आपको बतायेंगे।

शीघ्रता में हार्दिक सम्मान के साथ,

भवदीय,

हरि सिंह

जम्मू प्रासाद,

२६ अक्टूबर १९४७

परिशिष्ट - २

२६ अक्टूबर १९४७ को महाराजा हरिसिंह द्वारा कार्यान्वित विलय-पत्र

क्योंकि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ प्रावधान करता है कि अगस्त १९४७ के पन्द्रहवें दिन से एक स्वतन्त्र अधिराज्य 'भारत' की स्थापना होगी तथा गर्वनर जनरल के आदेश द्वारा यथानिर्दिष्ट कुछ छोड़कर, जोड़कर, आत्मसात् कर या संशोधन कर भारत शासन अधिनियम, १९३५ भारत अधिराज्य में लागू होगा।

तथा क्योंकि गवर्नर द्वारा अंगीकृत भारत शासन अधिनियम १९३५ प्रावधान करता है कि भारतीय राज्य अपने शासक द्वारा कार्यान्वित विलय-पत्र के द्वारा भारतीय अधिराज्य में शामिल हो सकते हैं।

अतः अब मैं श्रीमान् इंद्रमहेन्द्र राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री हरिसिंह जी जम्मू एवं कश्मीर नरेश तथा तिब्बत आदि देशाधिपति, जम्मू-कश्मीर राज्य का शासक, अपने उक्त राज्य में तथा उसके ऊपर अपनी सम्प्रभुता का उपयोग करते हुए एतद्द्वारा भारत अधिराज्य में विलय हेतु अपने इस लिखित विलय-पत्र को कार्यान्वित करता हूँ तथा

१. मैं एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मैं भारत अधिराज्य में इस उद्देश्य से सम्मिलित होता हूँ कि भारत के गवर्नर जनरल, अधिराज्य का विधानमंडल, संघीय न्यायालय, और अधिराज्य के प्रयोजनों से स्थापित अन्य कोई भी अधिराज्यीय अधिकरण, मेरे इस विलय-पत्र के आधार पर किन्तु सदैव इसमें विद्यमान आबन्धों के अनुसार, और केवल अधिराज्य के प्रयोजनों से ही, जम्मू-कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में (जिसका उल्लेख इसके पश्चात् 'यह राज्य' कहकर किया जायेगा) कार्यों का निष्पादन करेंगे जो १५ अगस्त १९४७ को भारत अधिराज्य में लागू हुए रूप में भारत शासन अधिनियम १९३५ के द्वारा या उसके अन्तर्गत उनमें निहित हों।

२. मैं एतद्द्वारा यह आश्वासन देने का दायित्व स्वीकार करता हूँ कि इस राज्य में अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी रूप में लागू किया जायेगा जहाँ तक वे मेरे विलय-पत्र के आधार पर यहाँ लागू हो सकते होंगे।

३. मैं अनुसूची में दिये गये विषयों को उन विषयों के समान ही स्वीकार करता हूँ, जिनके बारे में अधिराज्यीय विधानमंडल इस राज्य के लिए कानून बना सकता है।

४. में इस आश्वासन पर भारतीय गणराज्य में विलय करने की घोषणा करता हूँ कि यदि गवर्नर जनरल और राज्य के शासक के मध्य कोई समझौता होता है जिससे अधिराज्य के विधानमंडल के किसी विधान के अंतर्गत राज्य के प्रशासन से संबंधित कोई भी कार्य राज्य के शासक द्वारा किया जायेगा, तब ऐसा कोई भी समझौता इस विलय-पत्र का भाग बना माना जायेगा और तदनुसार भावित एवं प्रभावी होगा।

५. मेरे इस विलय-पत्र की शर्तें भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, १९४७ के किसी संशोधन द्वारा परिवर्तित नहीं की जायेंगी, जब तक कि मैं ऐसे संशोधन को इस विलय-पत्र के पूरक के रूप में स्वीकार नहीं करता।

६. यह विलय-पत्र अधिराज्य के विधानमंडल को किसी भी उद्देश्य के लिए भूमि के अनिवार्य अधिग्रहण के लिए कानून बनाने की शक्ति नहीं देता है, परन्तु मैं यह घोषणा करता हूँ कि यदि अधिराज्य इस राज्य में लागू होने वाले अधिराज्य के कानून के अंतर्गत किसी भूमि की प्राप्ति आवश्यक मानेगा तो मैं उनके निवेदन पर, उनके खर्च पर भूमि का अधिग्रहण करूंगा और यदि भूमि मेरी है तो मैं उस भूमि को मान्य शर्तों पर अथवा किसी समझौते के अभाव में भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त किसी मध्यस्थ द्वारा निर्धारित शर्तों पर हस्तान्तरित कर दूंगा।

७. भारत के किसी भावी संविधान को किसी भी रूप में स्वीकार करने का वचन देने अथवा ऐसे किसी भावी संविधान के अन्तर्गत भारत सरकार के साथ कोई ऐसा समझौता करने के मेरे स्वविवेक की शक्ति को नियन्त्रित करने वाली किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता इस विलय-पत्र में शामिल नहीं है।

८. इस विलय-पत्र में ऐसा कुछ नहीं है, जो इस राज्य में व इस पर मेरी संप्रभुता की निरन्तरता, अथवा इस विलय-पत्र के द्वारा या इसके अन्तर्गत किये गये प्रावधानों के अतिरिक्त राज्य के शासक के रूप में मेरे द्वारा अभी प्रयोग की जा रही शक्तियों, सत्ता या अधिकारों के सम्पादन अथवा राज्य में इस समय विद्यमान किसी विधान की वैधता को प्रभावित करता हो।

९. मैं एतद्द्वारा यह घोषणा करता हूँ कि मैं इस राज्य की ओर से इस विलय-पत्र का क्रियान्वयन करता हूँ, तथा इस प्रपत्र में मेरे या इस राज्य के शासक के किसी भी उल्लेख में मेरे वारिसों व उत्तराधिकारियों का उल्लेख भी अभिप्रेत है।

२६ अक्टूबर १९४७ को मेरे द्वारा दिया गया।

हरिसिंह

जम्मू-कश्मीर के महाराजाधिराज

भारत के गवर्नर जनरल द्वारा विलय की स्वीकृति

मैं एतद्द्वारा इस विलय-पत्र को स्वीकार करता हूँ।

दिनांक अक्टूबर उन्नीस सौ सैंतालीस का यह सत्ताईसवाँ दिन। (२७ अक्टूबर १९४७)

बर्मा के माउण्टबैटन

भारत के गवर्नर जनरल

परिशिष्ट - ३

सरदार पटेल को महाराजा हरिसिंह का पत्र

३१ जनवरी १९४८ को जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरिसिंह ने केन्द्रीय गृहमंत्री एवं उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम एक गोपनीय पत्र भेजा। जम्मू-कश्मीर राज्य की तत्कालीन राजनीतिक और सैनिक स्थिति पर प्रकाश डालने के बाद महाराजा ने उस ऐतिहासिक पत्र में लिखा –

"ऊपर बतायी गयी स्थिति के परिप्रेक्ष्य में मेरे मन में विचार उठते हैं कि मैं इसके सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया आपके सामने स्पष्ट रूप में रख दूँ। कभी-कभी मुझे लगता है कि अच्छा होगा कि मैं अपनी रियासत के भारत के साथ विलय को समाप्त कर दूँ। भारत सरकार ने रियासत के विलय को अभी तक अन्तिम रूप में स्वीकार नहीं किया है। यदि वह रियासत की उस धरती को, जिस पर पाकिस्तान ने बलात् अधिकार कर लिया है, मुक्त नहीं कर सकती और राष्ट्र संघ के जनमत सम्बन्धी प्रस्ताव को कार्यरूप देने की स्थिति में रियासत को पाकिस्तान के हवाले करती है, तब रियासत के भारत के साथ विलय के साथ बँधे रहने का कोई औचित्य नहीं है। इस समय शायद पाकिस्तान से बात करनी लाभप्रद हो। परन्तु अन्ततोगत्वा पाकिस्तान में मिलने से न मेरा राज रहेगा और न रियासत में कोई हिन्दू और सिख बचेगा। दूसरा विकल्प यह है कि विलय का प्रस्ताव वापस ले लूँ। ऐसा करने से संयुक्त राष्ट्र संघ का कश्मीर के मामले में हस्तक्षेप अपने आप समाप्त हो जायेगा, क्योंकि यदि विलय समाप्त कर दिया जाता है तो भारत सरकार का मेरे राज्य के विषय में कुछ कहने-करने का अधिकार स्वतः समाप्त हो जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि रियासत विलय के पूर्व की स्थिति में आ जायेगी। इस स्थिति की कठिनाई यह होगी कि तब कश्मीर में भारत की सेना नहीं रह सकेगी। जो भारतीय सैनिक रहेंगे वे स्वयंसेवी सहयोगी के रूप में रहेंगे। इस हालत में मैं अपनी सेना और भारतीय सेना के स्वयंसेवकों का नेतृत्व संभालने को तैयार हूँ। मुझे युद्ध का अनुभव है, अपनी वर्तमान असहाय स्थिति से मैं अपनी धरती व प्रजा की रक्षा के लिए लड़ते हुए मरना बेहतर समझता हूँ।

"जहाँ तक आन्तरिक राजनीतिक स्थिति का प्रश्न है, मैं अपने राज्य का सांविधानिक प्रमुख रहने को तैयार हूँ। परन्तु मैं नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं के काम से सन्तुष्ट नहीं हूँ। उन्हें हिन्दू-सिखों का ही नहीं अपितु बहुत से मुसलमानों का भी विश्वास प्राप्त नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि कुछ सुरक्षित अधिकार मेरे हाथ में रहें। मैं यह भी चाहूंगा कि मैं अपनी मर्जी का दीवान नियुक्त कर सकूँ। वह राज्य के मन्त्रिमण्डल के सदस्य और सम्भव हो तो इसके अध्यक्ष के रूप में काम करे।

"मेरे सामने एक अन्य विकल्प यह है कि मैं राजा के नाते अपना अधिकार न छोड़ते हुए रियासत के बाहर जाकर रहूँ ताकि मेरी प्रजा को मुझसे कुछ अपेक्षा न रहे। मैं यह समझ सकता हूँ कि जिस प्रकार श्री मेनन की सलाह से मेरे कश्मीर से आने की भी कुछ लोगों ने यह कहकर आलोचना की थी कि मैं कश्मीर से भाग आया, कुछ लोग यह आलोचना करेंगे कि मैं उन्हें उनके रहम पर छोड़कर जम्मू से बाहर चला गया। परन्तु केवल आलोचना के डर से ऐसी जगह बने रहना, जहाँ कोई कुछ नहीं कर सकता, मुझे ठीक नहीं लगता।

"तीसरा विकल्प यह है कि भारत सरकार सैनिक-क्षेत्र में अपनी जिम्मेदारी को प्रामाणिकता के साथ निभाये और पूरी शक्ति लगाकर राज्य से पाकिस्तानी आक्रान्ताओं और विद्रोहियों का सफाया करे। यह समझकर चलना चाहिए कि कश्मीर के मामले में सैनिक दृष्टि से पाकिस्तान बेहतर स्थिति में है। ज्योंही बरफ पिघलेगी वह कश्मीर घाटी पर सब तरफ से हल्ला बोलेगा, और लद्दाख को भी अपने अधिकार में ले लेगा। इसलिए आवश्यक है कि भारत सरकार सैनिक स्तर पर प्रभावी ढंग से सक्रिय हो। अन्यथा मुझे पहले दो विकल्पों में से एक को अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।"

(इस पत्र का तत्काल कुछ प्रभाव पड़ा। लद्दाख को बचाने के लिए प्रभावी प्रयास किया गया। परन्तु मीरपुर, मुजफ्फराबाद, गिलगित और बलतिस्तान क्षेत्रों से पाकिस्तानियों को खदेड़ने के लिए कोई विशेष पग नहीं उठाये गये। केवल बलतिस्तान का कारगिल नगर और कारगिल तहसील, जिसका बड़ा भाग लद्दाख के राजा के अधिकार में था, बचाये जा सके।)

परिशिष्ट - ३

सरदार पटेल को महाराजा हरिसिंह का पत्र

३१ जनवरी १९४८ को जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरिसिंह ने केन्द्रीय गृहमंत्री एवं उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम एक गोपनीय पत्र भेजा। जम्मू-कश्मीर राज्य की तत्कालीन राजनीतिक और सैनिक स्थिति पर प्रकाश डालने के बाद महाराजा ने उस ऐतिहासिक पत्र में लिखा –

"ऊपर बतायी गयी स्थिति के परिप्रेक्ष्य में मेरे मन में विचार उठते हैं कि मैं इसके सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया आपके सामने स्पष्ट रूप में रख दूँ। कभी-कभी मुझे लगता है कि अच्छा होगा कि मैं अपनी रियासत के भारत के साथ विलय को समाप्त कर दूँ। भारत सरकार ने रियासत के विलय को अभी तक अन्तिम रूप में स्वीकार नहीं किया है। यदि वह रियासत की उस धरती को, जिस पर पाकिस्तान ने बलात् अधिकार कर लिया है, मुक्त नहीं कर सकती और राष्ट्र संघ के जनमत सम्बन्धी प्रस्ताव को क्रियारूप देने की स्थिति में रियासत को पाकिस्तान के हवाले करती है, तब रियासत के भारत के साथ विलय के साथ बँधे रहने का कोई औचित्य नहीं है। इस समय शायद पाकिस्तान से बात करनी लाभप्रद हो। परन्तु अन्ततोगत्वा पाकिस्तान में मिलने से न मेरा राज रहेगा और न रियासत में कोई हिन्दू और सिख बचेगा। दूसरा विकल्प यह है कि विलय का प्रस्ताव वापस ले लूँ। ऐसा करने से संयुक्त राष्ट्र संघ का कश्मीर के मामले में हस्तक्षेप अपने आप समाप्त हो जायेगा, क्योंकि यदि विलय समाप्त कर दिया जाता है तो भारत सरकार का मेरे राज्य के विषय में कुछ कहने-करने का अधिकार स्वतः समाप्त हो जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि रियासत विलय के पूर्व की स्थिति में आ जायेगी। इस स्थिति की कठिनाई यह होगी कि तब कश्मीर में भारत की सेना नहीं रह सकेगी। जो भारतीय सैनिक रहेंगे वे स्वयंसेवी सहयोगी के रूप में रहेंगे। इस हालत में मैं अपनी सेना और भारतीय सेना के स्वयंसेवकों का नेतृत्व संभालने को तैयार हूँ। मुझे युद्ध का अनुभव है, अपनी वर्तमान असहाय स्थिति से मैं अपनी धरती व प्रजा की रक्षा के लिए लड़ते हुए मरना बेहतर समझता हूँ।

"जहाँ तक आन्तरिक राजनीतिक स्थिति का प्रश्न है, मैं अपने राज्य का सांविधानिक प्रमुख रहने को तैयार हूँ। परन्तु मैं नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं के काम से सन्तुष्ट नहीं हूँ। उन्हें हिन्दू-सिखों का ही नहीं अपितु बहुत से मुसलमानों का भी विश्वास प्राप्त नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि कुछ सुरक्षित अधिकार मेरे हाथ में रहें। मैं यह भी चाहूंगा कि मैं अपनी मर्जी का दीवान नियुक्त कर सकूँ। वह राज्य के मन्त्रिमण्डल के सदस्य और सम्भव हो तो इसके अध्यक्ष के रूप में काम करे।

"मेरे सामने एक अन्य विकल्प यह है कि मैं राजा के नाते अपना अधिकार न छोड़ते हुए रियासत के बाहर जाकर रहूँ ताकि मेरी प्रजा को मुझसे कुछ अपेक्षा न रहे। मैं यह समझ सकता हूँ कि जिस प्रकार श्री मेनन की सलाह से मेरे कश्मीर से आने की भी कुछ लोगों ने यह कहकर आलोचना की थी कि मैं कश्मीर से भाग आया, कुछ लोग यह आलोचना करेंगे कि मैं उन्हें उनके रहम पर छोड़कर जम्मू से बाहर चला गया। परन्तु केवल आलोचना के डर से ऐसी जगह बने रहना, जहाँ कोई कुछ नहीं कर सकता, मुझे ठीक नहीं लगता।

"तीसरा विकल्प यह है कि भारत सरकार सैनिक-क्षेत्र में अपनी जिम्मेदारी को प्रामाणिकता के साथ निभाये और पूरी शक्ति लगाकर राज्य से पाकिस्तानी आक्रान्ताओं और विद्रोहियों का सफाया करे। यह समझकर चलना चाहिए कि कश्मीर के मामले में सैनिक दृष्टि से पाकिस्तान बेहतर स्थिति में है। ज्योंही बरफ पिघलेगी वह कश्मीर घाटी पर सब तरफ से हल्ला बोलेगा, और लद्दाख को भी अपने अधिकार में ले लेगा। इसलिए आवश्यक है कि भारत सरकार सैनिक स्तर पर प्रभावी ढंग से सक्रिय हो। अन्यथा मुझे पहले दो विकल्पों में से एक को अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।"

(इस पत्र का तत्काल कुछ प्रभाव पड़ा। लद्दाख को बचाने के लिए प्रभावी प्रयास किया गया। परन्तु मीरपुर, मुजफ्फराबाद, गिलगित और बलतिस्तान क्षेत्रों से पाकिस्तानियों को खदेड़ने के लिए कोई विशेष पग नहीं उठाये गये। केवल बलतिस्तान का कारगिल नगर और कारगिल तहसील, जिसका बड़ा भाग लद्दाख के राजा के अधिकार में था, बचाये जा सके।)

परिशिष्ट-४

मेहरचंद महाजन द्वारा सरदार पटेल को शेख के संबध में लिखा गया पत्र

जम्मू
२४ दिसम्बर, १९४७

आदरणीय सरदार पटेल जी,

शेख अब्दुल्ला द्वारा महामान्य (महाराजा कश्मीर) को लिखे गये पत्र के २० तारीख को प्रकाशित होने से पहले ही उसकी एक प्रतिलिपि मैंने आपको भेजी थी। मुझे आश्चर्य है कि उक्त पत्र की प्रतिलिपि आपको क्यों नहीं मिली ? मैं उसी पत्र की एक और प्रतिलिपि आपकी सेवा में भेज रहा हूँ।

यह निरीह प्रजाजन (शेख अब्दुल्ला) जिसने महामान्य महाराजा कश्मीर के प्रति असंदिग्ध निष्ठा का अभिवचन दिया था अब उन पर जन-अदालत के सम्मुख मुकदमा चलाना चाहता है और उनसे पदत्याग करने की माँग कर रहा है। उसका नवीनतम दृष्टिकोण यह है कि महामान्य महाराजा कश्मीर अधिक से अधिक जम्मू, कठुआ और ऊधमपुर के जिले अपने पास रखकर रियासत के शेष भूभाग को पाकिस्तान सरीखे मुस्लिम गणराज्य को सौंप दें। अब वह जेल में बन्द मुस्लिम कान्फ्रेंस के नेता अब्बास के साथ भेंट करके अपने इस प्रस्ताव पर उसका समर्थन प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है।

सच पूछा जाये तो शेख अब्दुल्ला अब सभी प्रकार से महामान्य महाराजा कश्मीर की खुली अवज्ञा कर रहा है और अपनी बढ़ती हुई साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का रोज परिचय दे रहा है।

यदि आपकी अनुमति हो तो मैं आपके समक्ष शेख की प्रशासनिक क्षमता, दक्षता, साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों से संबंधित घटनाओं और महामान्य महाराजा कश्मीर की खुली अवज्ञा करने वाले उन सभी मामलों का विस्तृत विवरण पेश कर सकता हूँ जोकि वह श्रीनगर के नेशनल गार्ड्स की सहायता से कर रहा है। उसने यह समझ रखा है कि वह अपनी इच्छानुसार जो चाहे सो कर सकता है। आपका प्रत्युत्तर प्राप्त होते ही मैं शेख के पूरी तरह भ्रष्ट शासन और फासिस्टवादी कुशासन के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण आपको लिपिबद्ध करके भेज दूंगा।

आदर सहित,

आपका
(मेहरचन्द महाजन)

परिशिष्ट-५

आपरेशन टोपक

भारत-पाक सम्बन्धों के एक सैन्य विश्लेषण के अनुसार १९६५ में पाकिस्तान ने जम्मू-कश्मीर में व्यापक घुसपैठ कर भारत से जो युद्ध छेड़ा था, उसकी योजना पाकिस्तान के तत्कालीन विदेशमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने, 'आपरेशन जिब्राल्टर' नाम से बनायी थी। (नवभारत टाइम्स १७ जनवरी १९९०) वह पूर्णतः असफल रही। भुट्टो ने तब भारत से १००० वर्ष तक युद्ध लड़ने की इच्छा बतायी थी और फिर स्वयं राष्ट्रपति बनने पर भारतीय प्रधानमंत्री के साथ शिमला समझौता कर लिया। बीच के समय में एकाध योजना और बनी जिसे लागू नहीं किया जा सका। शत्रुता और प्रेमालाप की अनवरत आँखमिचौनी के इस खूनी खेल में वर्तमान कड़ी का नाम है 'आपरेशन टोपक', जो पूर्व सैनिक तानाशाह जिया उल हक ने तैयार की थी और जिसके कार्यान्वयन के सूत्र स्वयं सेना के हाथ में हैं और पूर्व-प्रधानमंत्री बेनज़ीर भुट्टो आन्तरिक राजनीतिक कारणों से उसका समर्थन करने के लिए विवश रही हैं।

'आपरेशन जिब्राल्टर' की तुलना में 'आपरेशन टोपक' इस अर्थ में भिन्न है कि जहाँ १९६५ में हिंसा और तोड़-फोड़ करने वाले सभी घुसपैठिये युद्ध-विराम रेखा से उस पार के पाकिस्तानी नागरिक थे, वहाँ इस बार कश्मीर घाटी में जन्मे या अन्य किसी रूप में जुड़े हुए भारतीय नवयुवकों को ही बरगलाकर अथवा भयादोहन करके देशद्रोहपूर्ण उपद्रवों में प्रयुक्त किया जा रहा है। साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति से देशद्रोही तत्त्व इन युवकों को युद्ध-विराम रेखा के उस पार ले जाते हैं जहाँ विशेष रूप से स्थापित शिविरों में पाकिस्तानी सेना के विशेषज्ञ उन्हें विघटनात्मक कार्यों के लिए मानसिक रूप से तैयार करने के साथ-साथ घातक शस्त्र चलाने और तोड़फोड़ करने का प्रशिक्षण देते हैं। तत्पश्चात् उनको आग्नेयास्त्रों के साथ चुपके से भारतीय क्षेत्र में वापस घुसा दिया जाता है।

पत्रकार अल्ताफ गौहर के अनुसार कश्मीर को भारत से तोड़ने के लिए पाकिस्तान इस समय जिस लम्बी परोक्ष लड़ाई की नीति पर चल रहा है, वह वस्तुतः 'आपरेशन जिब्राल्टर' के समय चीनी प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई द्वारा दिये गये परामर्श पर आधारित है। उस समय चाऊ के परामर्श की उपेक्षा करके पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी थी।

अब नीति है कश्मीर के बेरोजगार असन्तुष्ट युवकों और अन्य कठमुल्ला तत्त्वों को छापामार युद्ध का प्रशिक्षण देकर उन्हें कश्मीर घाटी तथा जम्मू के मुस्लिम प्रभाव वाले क्षेत्रों में राजनीतिक जड़ें जमाने का अवसर देना और फिर उनसे रक्तपात करवाकर भारतीय सुरक्षा-बलों द्वारा की जाने वाली कार्यवाही के बारे में संसार भर में शोर मचाना।

परिशिष्ट ६

रा. स्व. संघ अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा, मार्च १९९०

प्रस्ताव—कश्मीर-समस्या

भारत के भूभाग जम्मू-कश्मीर पर बलात् अधिकार करने के पाकिस्तानी षड्यंत्रों से कौन देशभक्त परिचित व चिंतित नहीं होगा। उनके द्वारा भेजे गये मुजाहिदीन घाटी के मुसलमानों में वर्षों से मजहबी उन्माद भड़का रहे हैं और उन्हें भारत के विरुद्ध जिहाद करने के लिए शस्त्रास्त्र देते आ रहे हैं। किन्तु केन्द्र और राज्य की सरकारों ने उनको नियंत्रित करने का कभी प्रयास नहीं किया। उसी का परिणाम है कि आज काश्मीर घाटी में भारत-विरोधी शक्तियाँ देश को खुली चुनौती दे रही हैं। वे उन सभी सूत्रों को समाप्त करने पर तुली हुई हैं जो कश्मीर को भारत का अंग दर्शाते हैं। फिर चाहे वह चक्रांकित तिरंगा राष्ट्रध्वज हो या आकाशवाणी दूरदर्शन केन्द्र, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया हो या भारत सरकार का कोई प्रतिष्ठान। भारतीय सेना की चौकियों पर भी, जिनके कारण पाकिस्तानी सेना भारतीय क्षेत्रों में पैर रखने का दुःसाहस नहीं कर पा रही है, उनके हमले बढ़ रहे हैं।

शत्रुपक्ष ने घाटी में रहने वाले हिन्दू समाज को अपने आक्रमण व अत्याचार का विशेष लक्ष्य बनाया है क्योंकि वे जानते हैं कि हिन्दुओं को उखाड़े बिना कश्मीर को भारत से अलग नहीं किया जा सकता। हिंदु नेताओं की हत्याओं और महिलाओं के शीलभंग की घटनाओं से हिन्दू समाज का मनोबल हिल गया है। वे अपना जीवन व सम्मान सभी कुछ संकट में पाते हैं। लगभग एक लाख हिन्दू घाटी छोड़ चुके हैं। उनका संरक्षण और पुनर्वास हमारी राष्ट्रीय जिम्मेदारी है। खेद का विषय है कि केन्द्र व राज्य की सरकारों ने उसका समुचित प्रबन्ध न करके अपने दायित्व की अब तक उपेक्षा की है। अ. भा. प्र. सभा का यह सुविचारित मत है कि यदि घाटी से हिन्दू निष्क्रमण रोका नहीं गया तो कश्मीर को भारत का अंग बनाये रखने में बाधाएँ बढ़ती ही जायेंगी।

इस सभा की यह मान्यता है कि बहुचर्चित क्षेत्रीय पिछड़ापन, बेरोजगारी अथवा राजनीतिक गतिरोध जैसी कोई समस्या आज की इस परिस्थिति का मूल कारण नहीं है। इस समस्या की जड़ में पाकिस्तानी षड्यंत्र और कश्मीरी मुसलमानों के एक बड़े वर्ग में भड़का मजहबी उन्माद और पृथकूतावाद है। राजनीतिक विशेषाधिकार और आर्थिक सुविधाओं का उपहार देकर, जैसा अब तक किया जाता रहा है, उसका सामना नहीं किया जा सकता है। तुष्टीकरण की नीति से समस्या हल नहीं हुई। उल्टे राष्ट्र-विरोधियों को प्रोत्साहन व शक्ति मिली है। यह सभा भारत सरकार को सावधान करती है कि जब तक पाकिस्तान का यह अघोषित युद्ध व पृथकूतावादी गतिविधियाँ जारी हैं और निष्क्रमित हिन्दू अपने क्षेत्र में पुनः वापस स्थापित नहीं हो जाते हैं, तब तक कश्मीर में किसी प्रकार की राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ करना देश-हित में नहीं होगा। अब समय गँवाये बिना इस चुनौती से युद्ध के ढंग से-लड़ना होगा। वही उसका एकमात्र समाधान है। राज्यपाल द्वारा इस दिशा में उठाये गये पग समर्थनीय हैं। भारत सरकार उनके मार्ग की अड़चनों को दूर करे और उनके हाथों को मजबूत करे। इस लड़ाई में जम्मू क्षेत्र की भूमिका का विशेष महत्त्व है। उसको सब प्रकार से पुष्ट रखना राष्ट्रीय दृष्टि से नितान्त आवश्यक है।

अ. भा. प्र. सभा देशवासियों और विशेष कर जम्मू-कश्मीर राज्य के निवासियों के मन से अनिश्चितता दूर करने के लिए यह आवश्यक मानती है कि भारत सरकार पाकिस्तान सहित सभी सम्बंधित देशों को स्पष्ट शब्दों में विदित करा दे कि हमारा देश जम्मू-कश्मीर राज्य के विलीनीकरण को पूर्ण और अन्तिम मानता है और जम्मू-कश्मीर के २/५ भाग पर पाकिस्तानी कब्जे को अवैध समझता है जिसके समाप्त होने पर कश्मीर समस्या स्वतः समाप्त हो जायेगी। इस सभा की यह मान्यता है कि जनमत संग्रह के नाम पर भारत के किसी भाग को पृथक् होने की छूट देने का विचार देश की अखण्डता व एकता के लिए अत्यन्त घातक है और राष्ट्रीय अस्मिता व स्वाभिमान के विरुद्ध भी! इसी प्रकार धारा ३७० को, जिसे संविधान में अल्पकालीन व्यवस्था के रूप में जोड़ा गया था, बनाये रखना राज्य के पूर्ण विलीनीकरण को नकारना है और पृथकूतावाद को कानूनी समर्थन देना है। उसको अविलम्ब समाप्त करना राष्ट्र की महती आवश्यकता है।

अ. भा. प्र. सभा भारत सरकार से मांग करती है कि –

(१) देश की सीमाओं को अभेद्य बनाने और शत्रुपक्ष को परास्त कर मातृभूमि को बचाने के लिए सेना को भी आवश्यक पग उठाने के पूर्ण अधिकार दिये जायें।

(२) सीमावर्ती क्षेत्र में सेवानिवृत्त सैनिकों को बसाया जाये और उनको व्यावसायिक और सुरक्षा सुविधाएँ दी जायें।

(३) घाटी से विस्थापित हुए हिन्दुओं को उनके क्षेत्र में वापस ले जाया जाये और उनकी क्षति-पूर्ति की व्यवस्था की जाये। उनको व्यावसायिक सुविधाओं के साथ सुरक्षा की गारंटी भी दी जाये और जब तक ये व्यवस्थाएँ संभव न हों, उन्हें पूर्ण आत्मीयता व सम्मान के साथ शिविरों में रखा जाये।

यह सभा समस्त देशवासियों से और विशेषकर संघ-कार्यकर्ताओं से आह्वान करती है कि घाटी से आये हिन्दुओं के पुनर्वास के लिए सभी आवश्यक पग उठायें और कश्मीर घाटी में पाकिस्तानी और पृथकूतावादी तत्त्वों को अलग-थलग कर उसे नियंत्रित करने में सदा की भाँति सरकार को पूर्ण-सहयोग करें।

परिशिष्ट-७

रा. स्व. संघ. अ. भा. का. मं. १९९०—हैदराबाद
प्रस्ताव—जम्मू-कश्मीर

यह उल्लेखनीय है कि मध्य एशिया व अरब क्षेत्र के कुछ गिनती के देशों को छोड़कर विश्व के लगभग सभी प्रमुख देशों ने कश्मीर समस्या के समाधान हेतु सुरक्षा परिषद् द्वारा ४० वर्ष पूर्व निर्धारित किये गये जनमत-संग्रह के उपाय को अब काल-बाह्य और अव्यावहारिक मान लिया है। उसके स्थान पर सब ओर शिमला समझौता के आधार पर अर्थात् परस्पर वार्ता के द्वारा समाधान निकालने की चर्चा चली है। और ऐसी वार्ता की पूर्वतैयारी के लिए भारत-पाकिस्तान की सचिव स्तर की बैठकें भी होने लगी हैं। किन्तु पाकिस्तानी नेतृत्व की यह सोच कि कश्मीर के बिना उनकी कल्पनाओं का पाकिस्तान पूरा नहीं होता, समस्या के समाधान में बाधक बनी हुई है।

यह समयोचित होगा कि भारत इन बैठकों के माध्यम से तथा अन्य उपयुक्त अवसरों पर पाकिस्तान को तथा कश्मीर समस्या में रुचि रखने वाले देशों को असंदिग्ध शब्दों में बताये कि भारत जम्मू-कश्मीर को अपना अविभाज्य अंग मानता है और उसके जिस २/५ भाग पर आक्रमणकारी पाकिस्तान ने बलात् अधिकार कर लिया है, उसके मुक्त हुए बिना तनाव दूर नहीं होगा। संसार का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि आक्रमणकारियों को उनके आक्रमण का फल भोगने का अधिकार नहीं होना चाहिए। इसलिए समस्या का टिकाऊ समाधान यही है कि विश्व-जनमत पाकिस्तान को भारतीय भूभाग को खाली करने के लिए विवश करे।

किन्तु अखिल भारतीय कार्यकारी मंडल अनुभव करता है कि यदि विश्व की बड़ी शक्तियों ने पाकिस्तान को आधुनिकतम शस्त्रास्त्र से लैस न किया होता, और दिये गये शस्त्रों को जम्मू-कश्मीर व पंजाब के पृथकतावादी तत्त्वों के हाथों में जाने से रोका होता तथा पाकिस्तान को "इस्लामिक बम" बनाने की चेष्टा करने से विरत किया होता तो पाकिस्तान को भारत की प्रभुसत्ता को चुनौती देने का दुःसाहस नहीं होता और कश्मीर में पृथकतावाद व हिंसा इस सीमा तक कभी न भड़कती। भारत सरकार को इन तथ्यों के प्रकाश में अत्यंत सतर्क रहना होगा और राष्ट्र की अखण्डता की रक्षा हेतु आवश्यक दृढ़ता व दूरदर्शिता का परिचय देना होगा।

अ. भा. का. मं. भारत सरकार से आग्रह करता है कि वह विश्व को जता दे कि भारत अपनी मातृभूमि की एक भी इंच भूमि को लेन-देन का विषय नहीं मानता। समस्या-समाधान हेतु रखे जा रहे राज्य-विभाजन के प्रस्ताव को वह कभी स्वीकार नहीं कर सकता और बड़ी से बड़ी कीमत देकर भी संपूर्ण राज्य की रक्षा करेगा। वैसे भी संसार का व हमारा अनुभव यही बताता है कि देश-विभाजन से राष्ट्र की समस्याओं का समाधान नहीं होता।

अ. भा. का. मं. भारत सरकार से अपेक्षा करता है कि वह जम्मू-कश्मीर के संपूर्ण राज्य को आक्रमणकारी पाकिस्तान से मुक्त कराने और मातृभूमि की अखंडता की रक्षा के लिए सभी आवश्यक कदम उठायेगी। का. मं. भारत सरकार को आश्वस्त करता है कि संघ का एक-एक स्वयंसेवक राष्ट्र-रक्षा हेतु सरकार के सभी प्रयासों में सहयोग देने के लिए सदा तत्पर रहेगा। अ. भा. का. मं. को पूर्ण विश्वास है कि इस संकट का सामना करने के लिए देश के सभी नागरिक एकजुट होकर खड़े होंगे और आक्रमणकारी पाकिस्तान को सदा-सर्वदा के लिए शिक्षा देने में सफल होंगे।

शारदा पुस्तकालय
(संजीवनी शा. द. मं. ...)
क्रमांक ......

४५८

सु प्र